

ISSN : 2321-6581
जुलाई - दिसम्बर - 2022
वर्ष : X, अङ्क - II
कुल अङ्क - XIX
Impact Factor : 5.037

शोध नवनीत
SHODH NAVNEET

षाण्मासिकी अन्ताराष्ट्रिया शोध-पत्रिका

The Half Yearly International Peer-Reviewed Research Journal of Humanities and Oriental Knowledge

हमारा प्रयास समाजोपयोगी, नवीन एवं प्राच्यज्ञान का प्रकाशन

"Our whole effort is to publish societal, innovative and oriental knowledge"

स्तुति प्राच्यविद्या समिति, गोण्डा (उ.प्र.)
STUTI PRACHYAVIDYA SAMITI, GONDA (U.P.)
अन्तर्जाल (Website) : www.shodhnavneet.com
अणुसंकेत (E-mail) : shodhnavneet@gmail.com
चलभाष (contact us) : +91-7800193920

शोध नवनीत
प्रधान सम्पादक : डॉ॰ अवधेश प्रताप सिंह ● सम्पादक : डॉ. प्रमोद कुमार मिश्र

जुलाई - दिसम्बर - 2022 ISSN : 2321-6581

वर्ष : X, अङ्क - II, कुल अङ्क - XIX
Impact Factor : 5.037

शोध नवनीत

SHODH NAVNEET

(षाण्मासिकी अन्ताराष्ट्रिया शोध-पत्रिका)

The Half Yearly International Peer-Reviewed (Refereed) Research Journal of Humanities and Oriental Knowledge

हमारा प्रयास समाजोपयोगी, नवीन एवं प्राच्यज्ञान का प्रकाशन
Our whole effort is to publish societal, innovative and oriental knowledge.

स्तुति प्राच्यविद्या समिति
51- जबर नगर, पो. परास,
जिला - गोण्डा, उत्तर प्रदेश, भारत - **271403**
अन्तर्जाल (Website) : www.shodhnavneet.com
अणुसंकेत (E-mail) : shodhnavneet@gmail.com
चलभाष (contact us) : +91-7800193920

- प्रबन्ध सम्पादक
  डॉ. अनुराधा शुक्ला

- विधिक सलाहकार
  श्री सतीश कुमार मिश्र
  एडवोकेट, चैम्बर नम्बर 18 ए, हाईकोर्ट, प्रयागराज – 211 002

- शोध नवनीत
- Shodh Navneet (International Peer-Reviewed (Refereed) Research Journal)
- ISSN : 2321-6581
- Impact Factor : 5.037
- वर्ष : X, अङ्क : II, कुल अङ्क : XIX, जुलाई – दिसम्बर 2022

- प्रकाशक
  स्तुति प्राच्यविद्या समिति (Reg. No. - 1137/2013-14)
  म० सं० 51, जबर नगर, पो० परास
  जिला – गोण्डा, उत्तर प्रदेश, भारत – 271403
- सम्पर्क सूत्र : +91-7800193920
- अणु–सङ्केत : shodhnavneet@gmail.com
- बेबसाइट : www.shodhnavneet.com
- सहयोग राशि (Subscription) : प्रति अङ्क ₹ 150
  Soft Copy : Free by E-mail or Free Download from- www.shodhnavneet.com
- D.D. 'Stuti Prachyavidya Samiti' Payable at 'Gonda' के पक्ष में होना चाहिए।

- मुद्रित :
  प्रभा कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिंटर्स
  30/21, यूनिवर्सिटी रोड, प्रयागराज – 211 002

नोट : शोधपत्र/शोधलेख के प्रति सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उसके आलेखकों का होगा तथा लेखकों के मत से सम्पादक, सम्पादक मण्डल आदि का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। सम्पादक मण्डल/समीक्षक समिति आदि द्वारा चयनित शोधपत्रों को नि:शुल्क प्रकाशित प्रदान किया जाएगा। शोध नवनीत से सम्बन्धित किसी भी विवाद के लिए न्यायिक क्षेत्र जनपद न्यायालय फैजाबाद होगा। ₹ 1500 सहयोग राशि का भुगतान करके 'शोध नवनीत' शोध पत्रिका का वार्षिक सदस्य बना जा सकता है। सदस्य बनने पर सदस्यता प्रमाण-पत्र के साथ पत्रिका का वार्षिक दो अङ्क प्रदान किया जायेगा।

मुख्य संरक्षक (Chief Patrons)

सम्पादक मण्डल (Editorial Board)

- **डॉ. राघवेन्द्र मिश्र**
  सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
- **डॉ. राजीव रंजन**
  असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- **डॉ. विवेक शर्मा**
  असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
  हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश
- **डॉ. देवराज**
  सहायक आचार्य, संस्कृत इक्डोल,
  हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला, हिमाचल प्रदेश
- **डॉ. हरिपद महापात्र**
  सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
  साँकराइल अनिल विश्वास स्मृति महाविद्यालय झाडग्राम, पश्चिम बंगाल
- **डॉ. प्रताप चन्द्र राय**
  सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
  सिधो-कानहो वीरसा विश्वविद्यालय पुरुलिया, पश्चिम बंगाल
- **डॉ. रवि प्रभात**
  सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
  महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा
- **डॉ. शैलेन्द्र कुमार मिश्र**
  असिस्टेंट प्रोफेसर, मानवशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
- **डॉ. विशाल श्रीवास्तव**
  असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय पचवस बस्ती (उ. प्र.)
- **डॉ. अमित कुमार मिश्र**
  विभागाध्यक्ष, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग,
  जी.एन.एस. विश्वविद्यालय, जमुहार, सासाराम, विहार
- **श्री आदित्य प्रताप सिंह**
  असिस्टेंट प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग,
  राजकीय महाविद्यालय पचवस बस्ती (उ. प्र.)
- **डॉ. रजनीश शर्मा**
  प्राचार्य, कंचन देवी शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय
  एवं कंचन देवी कॉलेज ऑफ कम्प्यूटर साइंस भीलवाड़ा, राजस्थान
- **डॉ. परमेश कुमार शर्मा**
  सहायक आचार्य-शिक्षाशास्त्र विभाग,
  श्री लाल बहादुर राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नव देहली

समीक्षक समिति / निर्णायक मण्डल
(Review Committee/Referees Board)

- **प्रो. पी. के. साहू**
  शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
- **प्रो. ई. एम. राजन**
  केन्द्रीय संस्कृतविश्वविद्यालयः, गुरुवायूर-परिसरः, तृश्शुर, केरलम्
- **प्रो. रमाकान्त पाण्डेय**
  निदेशक, मुक्तस्वाध्यायपीठ, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा. वि.), नई दिल्ली
- **प्रो. सुशील कुमार शर्मा**
  अंग्रेजी एवं आधुनिक यूरोपियन भाषा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
- **प्रो. उमाकान्त यादव**
  संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
- **प्रो. आमोदवर्धन कौण्डिन्यायन**
  वेद विभाग, वाल्मीकि विद्यापीठ, काठमाण्डू, नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय, नेपाल
- **डॉ. बजरंग बिहारी तिवारी**
  एसो. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, देश बन्धु डिग्री कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- **प्रो. प्रदीप कुमार दीक्षित**
  संस्कृत विभाग, विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कॉलेज, नवाबगंज, कानपुर (उ.प्र.)
- **प्रो. अमूल्य कुमार सिंह**
  प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, का. सु. साकेत महाविद्यालय, अयोध्या (उ.प्र.)
- **डॉ. राजीव सिन्हा**
  असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, श्रीकृष्ण महाविद्यालय,
  नदीया (कल्याणी विश्वविद्यालय), पश्चिम बंगाल
- **डॉ. सुदेव**
  असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, पाँच मुड़ा विश्वविद्यालय, बाँकुड़ा, पश्चिम बंगाल
- **डॉ. उमाकान्त प्रसाद**
  असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, विश्वभारती, शान्ति निकेतन, पश्चिम बंगाल

परामर्शदात्री समिति (Advisory Committee)

- **डॉ. जी. गङ्गाधरन नायर**
  पूर्व डीन एवं प्रोफेसर, संस्कृत व्याकरण विभाग,
  श्री शङ्कराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालडी, केरल
- **प्रो. ए. पी. सच्चिदानन्द**
  प्राचार्य, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा. वि.), राजीव गाँधी परिसर शृङ्गेरी , कर्नाटक
- **प्रो. लक्ष्मीनिवास पाण्डेय**
  प्राचार्य, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा. वि.), वेदव्यास परिसर बलहार, हिमाचल प्रदेश

नोट : शोधपत्र/शोधलेख का प्रकृति के अनुसार सम्पादक मण्डल एवं समीक्षक समिति में अन्य विषय विशेषज्ञों का सहयोग लिया जा सकता है। शोधपत्र दो या दो से अधिक विशेषज्ञों की समीक्षा के अनन्तर ही प्रकाशित किया जाएगा।

सम्पादकीय (Editorial)

भारतीय संस्कृति सर्वदा से ज्ञानप्रधान संस्कृति रही है। संस्कृति शब्द 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से क्तिन् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है– सम्यक् कृति अर्थात् सदाचारपूर्ण कर्म। यहाँ सम उपसर्ग से 'समपरिभ्यां करोतौ भूषणे' इस सूत्र से भूषण अर्थ में सुट् आगम हुआ है जिससे यह भाव द्योतित होता है कि संस्कृति को सम्यक्तया धारित करने वाला प्राणी ही लोक में भूषित होता है। लोक में हम दो प्रकार की सृष्टि का अनुभव करते हैं – चेतन सृष्टि तथा जड़ सृष्टि। इन दोनों प्रकार की सृष्टियों में चेतन सत्ता को प्रधान माना जाता है जिसका मुख्य कारण उसकी ज्ञानशक्ति है। चेतन अपनी ज्ञानशक्ति के द्वारा लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार के कल्याण को अर्जित करता है। हमारे शास्त्रों में चतुर्दश एवं अष्टादश विद्यास्थानों का उल्लेख प्राप्त होता है जो हमारी संस्कृति की ज्ञानप्रवणता को निदर्शित करता है।

भारतीय ज्ञानपरम्परा की यह विशेषता रही है कि यहाँ जिज्ञासु तथा शिष्य की ज्ञानप्राप्ति की योग्यता के परीक्षण की व्यवस्था रही है। विभिन्न शास्त्रों के ज्ञान प्राप्ति से पूर्व जिज्ञासु में क्या योग्यताएँ होनी चाहिए इसका विस्तृत विवेचन हमें शास्त्रों में मिलता है। ऐसे योग्यता सम्पन्न जिज्ञासु को ही 'अधिकारी' कहा जाता है। वेदान्तशास्त्र में अधिकारी के लक्षण का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। अद्वैतवेदान्त के प्रकरण ग्रन्थ वेदान्तसार में आचार्य सदानन्द जी कहते हैं – **''अधिकारी तु विधिवदधीतवेदवेदाङ्गत्वेन आपाततोऽधिगताखिलवेदार्थो अस्मिन् जन्मनि जन्मान्तरे वा काम्यनिषिद्धवर्जनपुरस्सरं नित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तोपासनानुष्ठानेन निर्गतनिखिलकल्मषतया नितान्तनिर्मलस्वान्तः साधनचतुष्टयसम्पन्नः प्रमाता अधिकारी''** अर्थात् जिसने इस जन्म में अथवा किसी और जन्म में वेदों और वेदाङ्गों का अध्ययन करके उनके अर्थ को आपाततः जान लिया है, काम्य और निषिद्ध कर्मों का परित्याग करके नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित्त और उपासना कर्मों के आचरण से चित्त के समस्त कल्मषों के निवृत्त हो जाने के कारण जिसका अन्तःकरण अत्यन्त निर्मल हो चुका है, ऐसा साधनचतुष्टय से सम्पन्न (विवेक, वैराग्य, शमादिषटकसम्पत्ति और मुमुक्षुत्व) प्रमाता ही अधिकारी कहलाता है। इस प्रकार के अधिकारी को किस प्रकार के आचार्य से ज्ञान ग्रहण करना चाहिए, शास्त्र में इसका भी विस्तृत निर्देश मिलता है। छान्दोग्य उपनिषद् का वचन है – **'आचार्याद्धैव विदिता विद्या साधिष्ठं प्रापयति'** (छान्दोग्योपनिषद्, ४.९.३) अर्थात् आचार्य से ग्रहण की गयी विद्या ही श्रेष्ठ होती है तथा इष्ट को प्राप्त कराने में समर्थ होती है। इसी उपनिषद् में कहा गया है – **'आचार्यवान् पुरुषो वेद'** (छान्दोग्योपनिषद्, ६.१४.२) अर्थात् प्रशस्त आचार्य ही ब्रह्म को जानता है। जो जिज्ञासु ऐसे ब्रह्मविद प्रशस्त आचार्य से ज्ञान प्राप्त करता है वही ब्रह्म को जानता है। अब यह जिज्ञासा होती है कि प्रशस्त आचार्य कौन होता है? बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है–**'यश्च श्रोत्रियोऽवृजिनकोऽपहतः'** (बृह. उप., ४.३.३) अर्थात् जो श्रोत्रिय, अवृजिन तथा अपापहत है,

वही आचार्य होता है। श्रोत्रिय का अर्थ होता है – **वेदज्ञ**। जो व्यक्ति शास्त्रों में विहित कर्मों का शास्त्रविधि से अनुष्ठान करते हुए निष्पाप हो जाता है। अपापहत का तात्पर्य है जो मुक्ति से भिन्न लौकिक फलों की इच्छाओं से ग्रस्त नहीं होता है। श्रुति का कथन है कि जो जिज्ञासु ऐसे आचार्य से शास्त्र का अध्ययन करता है वही शास्त्रों के तात्पर्य को सम्यक्तया ग्रहण कर पाता है तथा अपने परम लक्ष्य को अर्जित करने में सफल होता है।

'शोध नवनीत' शोध पत्रिका के प्रकाशन को एक दशक पूर्ण हो रहा है। इसका यह १९वाँ अंक (जुलाई–दिसम्बर २०२२) आप सभी सुविज्ञों को समर्पित है। इस अंक में वैदिक एवं लौकिक साहित्य से सम्बद्ध, व्याकरणशास्त्र के गूढ़ विचारों के साथ विविध सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं मानविकी विषयों को समाहित करने वाले संस्कृत, हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषा के चयनित शोधालेखों का संकलन किया गया है। ये आलेख अपने विषय के प्रतिपादन के साथ ही नवीन शोध के प्रेरक भी हैं। अतः इनका पठन, मनन और सम्प्रेरण शोधार्थियों के लिए अत्यन्त उपादेय है। प्राच्यज्ञान को संरक्षित एवं प्रकाशित करने वाली वर्तमान शोध को वैश्विक पटल पर ले जाने के लिए अनवरत प्रयत्नशील यह पत्रिका आपके सफल अनुसन्धान की सहगामिनी और प्रेरिका के रूप में सदैव आपके साथ है – '**चरैवेति चरैवेति**'।

प्रधान सम्पादक/सम्पादक

विषयानुक्रमणिका
(CONTENTS)

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

निर्वाणम्

तुशि चक्मा*

उपक्रमणिका

यत्र सर्वधर्माणां मुख्यं लक्ष्यं स्वर्गप्राप्तिः भवति तत्र बौद्धधर्मस्य मुख्यलक्ष्यं निर्वाणप्राप्तिः। बौद्धधर्मे निर्वाणविषये न स्पष्टतया उक्तः। गौतमबुद्धः विविधविमर्शेन निर्वाणविषये संक्षिप्तविचारं दत्तवान्। बौद्धधर्मे चत्वारि आर्यसत्यानि सन्ति, यथा– शोकोः अस्ति, शोकहेतुः अस्ति, शोकमुक्तिः अस्ति शोकनिर्गमनमार्गः च अस्ति। अस्य च शोकस्य निर्गमनमार्गः अष्टाङ्गमार्गः भवति। यत् सम्यक् ज्ञानं, सम्यक् निश्चयः, सम्यक् वाक्यं, सम्यक् कार्यं, सम्यक् जीविका, सम्यक् व्यायामः, सम्यक् स्मृतिः सम्यक् समाधिश्च। अभ्यासेन् एव परममुक्तिः निर्वाणं वा प्राप्तुं शक्यते। अतः तृष्णायाः जन्म–मृत्यु–दुःखचक्रस्य पूर्णनिरोधस्य नाम निर्वाणम्।

निर्वाणस्य विचारः

'नि' उपसर्गेण सह बाणशब्दस्य संयोगेन निर्वाणशब्दस्य निर्माणं भवति। अभावक्षयान्तादिभावे 'नि' इति उपसर्गः। बाणशब्दस्य आभिधानिकार्थः धनुबाणः। किन्तु अत्र तृष्णार्थे बाणशब्दः प्रयुज्यते। अतः निर्वाणम् इत्यर्थः तृष्णाभावः। गौतमबुद्धः संसार–मानवता–कल्याणार्थं यस्य धर्मस्य प्रचारं कृतवान् तस्य मुख्यं लक्ष्यं निर्वाणम् अस्ति। यः धर्मः अवलोकितः तृष्णाबन्धनभङ्गः निर्वाणम्। गौतमबुद्धः उक्तवान् – यथा पुनः पुनः जन्मं दुःखं भवति तथा मृत्युः अपि शोकस्य कारणम्। यतः मृत्युः शोकान्तं न करोति। पुनर्जन्मं तं अवश्यं गृह्णीयात्। प्रश्नः अस्ति यत् एतत् पुनर्जन्मं किमर्थम्। तृष्णा कामस्य मुख्यकारणम्। अतः तृष्णायाः पूर्णतया उन्मूलनस्य आवश्यकता पुनर्जन्मनिवारिता। यदि जन्मं न स्यात् तर्हि मृत्युः न भविष्यति। जन्ममृत्युप्रदक्षिणमिदं बौद्ध–भाषायां 'भवचक्रम्' इति कथ्यते। यदि त्वं तस्मात् मुक्तः न भवसि तर्हि शोकः न समाप्तः भवति। संक्षेपेण सर्वदुःखानां निवृत्तिः निर्वाणम् इत्युच्यते।

गौतमबुद्धः उवाच – हे भिक्षवः! इदं जगत् प्रज्वलितं भवति। किं कारणमिदं जगत् प्रज्वलितं भवति। प्रज्वलितमिदं जगत् रागाग्निद्वेषाग्निमोहाग्निभिः। धर्मपदे उक्तं – जगत् अनित्यं। दुःखितमात्मं च। न किमपि लोके स्थायित्वं वर्तते। अयं संसारः सर्वदा परिवर्तनशीलः एव भवति। यत्र अनित्यं जीवलोकं तत्र तत्त्वं कुतः? सर्वविधास्तित्वविनाशनम् इति निर्वाणम्। अत्रैव जन्ममृत्युर्निवर्तते तृष्णा च निवर्तते।

---

* अतिथि शिक्षिका, संस्कृत–विभागः, धर्मनगरं शासकीय महाविद्यालयं धर्मनगरम्, त्रिपुरा (उः)

निर्वाणस्य प्रकारयोः चर्चा

निर्वाणं द्विविधं –सोपादिशेषनिर्वाणं अनुपादिशेषनिर्वाणं च।

१. **सोपादिशेषनिर्वाणम् –** रूप–दु:ख–परिभाषा–संशोधन–विज्ञानम् इति जीव–महापुरुषस्य पञ्च–तत्त्वानि शरीरे वर्तते तावत् निर्वाण–प्राप्तिः भवति तस्य नाम सोपादिशेषनिर्वाणम्। अत्र सामग्री वर्तमानजीवनस्य शरीरं मनः च निर्दिशति। सामान्यजनाः आन्तरिक–वाह्येन्द्रियाणां प्रति आकृष्टाः भवन्ति। सोपादिशेषनिर्वाणग्रहणं मुक्तार्याः न रूप–रस–शब्द–गन्ध–स्पर्श–प्रियाः। यावत् भौतिकशरीरतत्त्वानि सन्ति तावत् तेषां कर्मम् अवरुद्धं भवति। अतः पञ्चस्कन्धः विद्यमानावस्थायां यदा भक्तः शोकविनाशेन निर्वाणज्ञानं साक्षात्करोति तदा स सोपादिशेषनिर्वाणम् उच्यते।

२. अनुपादिशेषनिर्वाणम् – निर्वाणदर्शी मुक्तपुरुषः पञ्चस्कन्धं नाशयित्वा यदा परिनिर्वाणे निरुध्यते तदा ततः अनुपादिशेषनिर्वाणम् इत्यच्यते। एतत् निर्वाणं सम्पूर्णतया निवारणीयम्। एतत् निर्वाणं प्राप्य जनः पुनः न प्रज्वलिष्यति। सः जन्ममृत्युशृङ्खलाभ्यो विमुक्तः सर्वथा। एतादृशस्य निर्वाणस्य न विपाकः, एषा स्थितिः अनिर्वचनीयः, सुख–दु:ख–प्रशमनं करोति। सुख–दु:ख–प्रशमनं परमं सुखं भवति। अत्रैव नित्यलोकप्रवाहः समाप्तः भवति। गौतमबुद्धः उक्तवान् – ''निब्बानं परमं सुखम्।'' आचार्यः नागार्जुनः निर्वाणस्य विषये उक्तवान्– ''अप्रतीतम् असस्प्राक्तम् अनुच्छिन्नम् अशाश्वतम्,अनिरुद्धम् अनुत्पन्नम् एव निब्बानं उच्यते।'' गौतमबुद्धः बोधं प्राप्य ४५ दीर्घवर्षपर्यन्तं धर्मप्रचारं कृतवान्।

निर्वाणस्य स्वरूपविषये भिन्नानि मतानि

गौतमबुद्धः स्व शिष्यान् निर्वाणस्य स्वरूपविषये स्पष्टतया न वर्णितवान्। निर्वाणस्थितिविषये यदि कश्चित् प्रश्नः पृष्टः सः किमपि प्रश्नस्य उत्तरं न दत्तवान्। निर्वाणविषये बुद्धस्य मतं किमस्ति तत् सम्यक् निर्धारयितुं न शक्यते। बुद्धस्य निधनानन्तरं तस्य शिष्याणां मध्ये निर्वाणविषये असहमतिः अभवत् यद्यपि ते सर्वे निर्वाणमेव दु:खनिवृत्तिः इति सहमताः आसन्। निर्वाणविषये बौद्धानां चत्वारि भिन्नानि मतानि सन्ति, यथा–

१. **निर्वाणं नित्यं विलोपनम् –** निर्वाणं शब्दस्य अर्थः निवर्तनीयमिति बहवः जनाः उक्तवन्तः। रतनसूत्रे उक्तम्– ''निब्बन्ति धीरा यथायं पदीपो'' यथा तैलस्य अभावे दीपज्वाला निष्पद्यते, तथा कामपात्रे निवर्तते जीवनं निष्पद्यते। कामं नीत्वा जीवनम्। कामनाशेन निर्वाणप्राप्ते जीवनस्य पूर्णविनाशः भवति। एतत् मतं बुद्धस्य अनित्यवादस्य सह सुसंगतः अस्ति। अनित्यवादानुसारे– ''**सर्वम् अनित्यम्।**'' केवलं परिवर्तनमेव महत्त्वपूर्णम् अस्ति। स्थायी सत्ता वस्तुतः किमपि नास्ति। निर्वाणावस्थायां सत्त्वस्य सम्पूर्णविनाशः भवति। अस्य मतस्य समर्थकाः द्वे प्रकारौ निर्वाणस्य उल्लेखं कृतवान् – निर्वाणं परिनिर्वाणं च। जीवतो निर्वाणमाप्नोति अर्हत् इति उच्यते। अर्हतस्य जीवनं निष्क्रियावस्था न भवति। निर्वाणं प्राप्य गौतमबुद्धः कार्यजीवनं जीवितवान्। परिनिर्वाणं प्राप्य सर्वाणि कर्माणि निवर्तन्ते, यतः तदा सत्ता एव विलुप्ता भवति।

परिनिर्वाणं इति परमार्थः। हिनयानी बौद्धाः निर्वाणस्य अस्य प्रकारः नकारात्मकं व्याख्यानं दत्तवन्तः।

अस्य मतस्य आलोचनायां हिरियन्नः अवदत् – यदि निर्वाणं केवलं अभावस्य वा निष्त्वस्य वा अवस्था उच्यते तर्हि बुद्धविहितमार्गेण न कोऽपि मानवः निर्वाणप्राप्त्यर्थं प्रेरयिष्यति फलतः च बुद्धस्य उपदेशाः विफलाः भविष्यन्ति। अतः निर्वाणस्य अभावः, सत्ताप्रलयः इति व्याख्यातुं न शक्यते, यत् बुद्धस्य उपदेशं सामान्यजनानां निकटे स्वीकार्यं कर्तुं शक्यते।

२. निर्वाणं एकं नित्यानन्दमवस्था – निर्वाणशब्दस्य अर्थः शीतलीकरणं वा शीतत्वं इति ये अवदन् ते निर्वाणं नित्यानन्दमवस्था इति अवदन्। निर्वाणम् इत्येव व्याख्यानुसारेण न कामनिवृत्तिः न वा भावनिवृत्तिः इत्यर्थः। धर्मपदे निर्वाणं सङ्गरहितं, निर्भयं, सुखदवस्था इति कथ्यते। निर्वाणं शान्तावस्था यथा कामाः विग्रहाश्च निवर्तन्ते। कामो मनः बाधते, उद्दीपयति, निर्वाणं प्राप्य मनः निरुध्यते मनश्च निर्भयं शोकात्मनिरोधावस्थायां च विराजयति। नागसेनः ग्रिकराजः मिलिन्दं निर्वाणस्य विषये अवदत् – निर्वाणमवाप्नोति यः पुरुषः परमदुःखं निवर्तते, न पुनः लौकिकबन्धैः बद्धो भवति, नित्यानन्दशान्तिं च प्राप्नोति। सर्वपल्ली राधाकृष्णन् अस्य मतस्य समर्थने अवदत् – ''निर्वाणस्य लक्ष्यं न शून्यताप्राप्तिः, सिद्धिप्राप्तिः, परमशान्तिं आनन्दमयावस्था च प्राप्तिः निर्वाणस्य लक्ष्यं। हिरियन्नः निर्वाणस्य विषये उक्तवान् – अस्य प्रकारस्य विचारः उपनिषदस्य मोक्षस्य अवधारणायाः समानम्। उपनिषदि मोक्षं परमशान्तिं आनन्दमयावस्था च कथ्यते। निर्वाणप्राप्तिः आनन्दमयनित्यत्वेन एव इत्यर्थः।

निर्वाणस्य विषये अस्य प्रकारस्य मतं बुद्धस्य जीवनपद्धत्या सह सङ्गतम् अस्ति। गौतमबुद्धः निर्वाणं परमादर्शः कथितवान्। यदा निर्वाणं नित्य–शान्त–आनन्दावस्था इति गण्यते तदा एव तत् परमं वा आदर्शं वा सामान्यजनेन ग्राह्यं भवितुम् अर्हति, निर्वाण–प्राप्तिमिच्छा च भवितुमर्हति। निर्वाणं यदि निरपेक्षं शून्यत्वं न कश्चित् सत्त्वविलोपनमुत्साहः स्यात्। गौतमबुद्धस्य जीवनं तस्य सन्देशः अस्ति। गौतमबुद्धः निर्वाणं प्राप्य निष्क्रियजीवनं न जीवितवान्। सः जीवितानां हिताय सक्रियजीवनं जीवितवान्। एवमेव परिनिर्वाणोऽपि नित्यविलुप्तः न भवति। परिनिर्वाणावस्थायां आत्मा शान्त–आनन्द–स्थितौ विराजयति।

परन्तु निर्वाणविषये इदमपि भावपूर्णं मतमपि समयक् बौद्धमतं स्वीकुर्वितुं न शक्यते, यतः एतत् बुद्धस्य अनात्मवादस्य अवज्ञां कृतवान्। गौतमबुद्धस्य मते – '**सर्वम् अनात्मकम्।**' स्थायी आत्मा इति न विद्यते। आत्मनः चैतन्यधारा इत्यर्थः। निर्वाणं आदर्श नित्यावस्था मत्वा नित्यात्मनास्तित्वं बोधयति, यः नास्तिकवादविरोधः। परन्तु अस्य मतस्य समर्थकाः अस्य विषयं भिन्नरूपेण व्याख्यां कर्तुम् इच्छन्ति। तेषां व्याख्यानुसारे अनात्मवादे गौतमबुद्धः व्यक्तिग़तात्मना अस्तित्वं तिरस्कृतम्, आत्मानं परमात्मा वा न निराकरोत् नित्यः। निर्वाणप्राप्तेः अनन्तरं यद्यपि जीवस्य व्यक्तिगतसत्त्वस्य नाशः भवति तथापि सः परमात्मरूपत्वेन एव तिष्ठति। किन्तु निर्वाणविषये अस्य प्रकारस्य व्याख्या अपि बौद्धमतत्वेन स्वीकृतं न शक्यते। गौतमबुद्धः

निर्वाणविषये न स्पष्टतया किमपि उक्तवान्, न च निर्वाणं विचारविलोपनम् इति वर्णितवान्, तेन च सुखदशा इति न परिकीर्तितम्। अतः द्वितीयः मतं अपि विना संकोचं बौद्धदृष्टिः वक्तुं न शक्यते।

३. निर्वाणम् इति नित्याविकारमवस्था- हीनयानसम्प्रदायेषु मध्ये वैभाषिकाः निर्वाणं नित्यानन्दावस्था उच्यते। निर्वाणस्य न उत्पत्तिर्न विनाशः निर्वाणऽजमसृष्टोऽकृष्टः एकः नित्यावस्था। अस्यानुसारे आत्मा मूलतः अचेतनं पदार्थः। विग्रहस्य फलस्वरूपात्मनि चेतना उत्पद्यते। शरीरसंयुक्तं चेत् आत्मानः सृज्यन्ते मनोदशाः। इति आत्मनः बन्धावस्था। निर्वाणे आत्मा देहसक्तो मनोस्थितिः स्थगितः च। अस्मिन् अवस्थायां यद्यपि आत्मा अस्ति तथापि भावः नास्ति – यथा शोकभावः नास्ति तथा सुखस्य भावः अपि नास्ति। निर्वाणं नित्याविकारा न तु सुखदशा। निर्वाणावस्थायां पञ्चेन्द्रियाणां प्रलयात् न हर्षशोकभावः। निर्वाणम् इति मौन–अचेतनस्य अवस्था। इयं निर्वाणव्याख्या अपि गौतमबुद्धस्य अनित्यत्वविरुद्धा अस्ति। अनित्यवादस्य मते स्थायी सत्ता इति किमपि नास्ति। केवलं परिवर्तनमेव सत्यम्। अनित्यवादानुसारेण निर्वाणावस्थायां स्थायी आत्मा न स्वीक्रियते।

५. निर्वाणम् अनिर्वचनीयं स्थितिः – निर्वाणविषये गौतमबुद्धस्य मौनस्य उल्लेखं कृत्वा बहवः वदन्ति यत् निर्वाणं अवर्णनीयावस्था अस्ति। एतत् निरुत्तरमाध्यमेन सः तस्य शिष्यान् वक्तुमिच्छति स्म यत् निर्वाणस्य स्थितिः वर्णयितुं न शक्यते। लौकिकभाषायाः माध्यमेन व्यक्तं कर्तुं न शक्यते। निर्वाणस्य विषये केवलं वक्तुं शक्यते यत् निर्वाणं दुःखनिवृत्तेः परमस्थितिः। एतदतिरिक्तं निर्वाणस्य स्थितिः शुभाशुभं वा शब्दैः वर्णयितुं न शक्यते।

नागार्जुनः निर्वाणविषये एतत् मतं प्रकटितवान्। नागार्जुनः अनुभवात् परं पारमार्थिकं सत्तां निर्दिशति स्म। अस्य परमभावस्य साक्षात्कारः निर्वाणम् एव। एषा सत्ता न केवलं अनुभावात्मका, अपितु बौद्धिकी अपि न भवति। एषा सत्ता केवलं भावनामध्यमेन प्रतीतुं शक्यते – यद्यपि सा प्रतीतिः भाषामाध्यमेन वर्णयितुं न शक्यते। नागार्जुनः अस्य परमसत्तां तथागतो वा बुद्धकायः अवदत्। यस्य विषये वर्णनं न सम्भवति। तथागतो वा बुद्धकायश्चतुष्टयस्य न समाविष्टम्। अस्य चत्वारकोटिः– सत् कोटिः, असत् कोटिः, सदसत् कोटिः अनुभयकोटिः च। बुद्धकायः सत्, असत्, सदसत्, अनुभयः इति न वर्णयितुं शक्यते।

निर्वाणावस्थायाः एषा व्याख्या अद्वैतवेदान्तस्य ब्रह्मसाक्षात्कारसदृशम्। यथा ब्रह्मविषये सत्, असत्, सदसत्, अनुभयः इति किमपि वक्तुं न शक्यते, तथैव निर्वाणस्य विषये अपि किमपि वक्तुं न शक्यते। अद्वैतवेदान्तस्य सह नागार्जुनस्य मतभेदः इति, अद्वैतवेदान्तस्य मते, ब्रह्मप्राप्तिः मुक्तिः ब्रह्मः सच्चिदानन्दस्वरूपं च। नागार्जुनः निर्वाणावस्थायां आनन्दमयावस्था न अवदत्। निर्वाणम् इति समाधिस्थितिः। निर्वाणावस्थायां शान्तिः आनन्दश्च भवति चेदपि सांसारिकशान्तिः आनन्दात् च भिन्ना भवितुमर्हति, तस्य सांसारिकपदैः वर्णनं विकृतवर्णनं स्यात्। निर्वाणविषये विविधमतानां मध्ये एतत् अन्तिमं मतं बुद्धमतत्वेन ग्रहीतुं शक्यते। सम्भवतः एतत् एव गौतमबुद्धः निरुत्तरस्य माध्यमेन निर्वाणस्य विषये बोधयितुं प्रयतमानोऽभवत्, यत् पारमार्थिकप्रतीतिः लौकिकानुभवात्

भिन्नप्रकृतिः अस्ति, पारमार्थिकसत्त्वं लौकिकभाषायाः माध्यमेन व्यक्तं कर्तुं न शक्यते इति।

निर्वाणस्य अनुसरणस्य आवश्यकता

लोभद्वेषहिंसादि अकुशलकर्मात् निवृत्या कुशलकर्मेण शान्तसंसारस्य निर्माणं तथा जन्ममृत्युरोगशृङ्खलाबद्धदुःखजीवनात् मुक्तये निर्वाणस्य अनुसरणं आवश्यकम्। तृष्णाद् शोकः उत्पद्यते। अज्ञानं तृष्णायाः कारणम्। अज्ञानस्य कारणे जनाः विविधानि कुकर्माणि कुर्वन्ति। अज्ञानी जनाः आत्मनः अपि च अन्वषां हानिम् अपि कुर्वन्ति। निर्वाणार्थं प्रयतमानेन पुरुषेण सर्वदा कुशलकर्मं कर्तव्यम्। अज्ञानं लोभद्वेषमोहस्य अथकानुसन्धानेन नाशं कर्तव्यम्। निरन्तरनिर्वाणानुसन्धानेन सः पुरुषः निर्भयः परोपकारी च भवति। फलतः आत्मनः सर्वस्य च कल्याणं करोति, लोके सर्वविधहितकारणत्वं भवति। अन्येषां हानिं कर्तुमिच्छा, अभिमानादि त्यजति। सः आत्मसंयमस्य अभ्यासयति। सर्वेषां कृते मैत्रीपूर्णाः भवन्तु। निर्वाणस्य अभ्यासः करणीयः। अल्पकाले निर्वाणप्राप्तिः न सम्भवति अतः कठिनाभ्यासः करणीयः भवति।

यद्यपि निर्वाणं दुर्बोधं व्याख्यानं च भवति तथापि जनानां निर्वाणप्राप्तिः सम्भवति। गौतमबुद्धः उक्तवान्– मानवजन्मं दुर्लभम् । कारणं जनानां मध्ये अन्तःकरणम् अस्ति। पुण्यकर्मेण मानवजन्मं प्राप्तव्यः। देवाः केवलं सुखं भोगयन्ति। प्रेताः केवलं दुःखं भोगयन्ति। पशवः प्राकृतिकवृत्तिभिः निर्देशिताः भवन्ति। केवलं मनुष्याः एव लोके सुखं दुःखं च अनुभवन्ति। मनुष्यातिरिक्तपशुनां जीवनानि कठिनं अनिश्चितश्च। अकुशलस्य कर्मस्य कारणे पशुरूपेण जन्मं ग्रहीतव्यं भवति। मनसि निर्वाणप्राप्तिकामना चेतना च जागृत्य सत्कर्मकरणं चेत् पशुकुलजन्मसंभावना विघ्न्यते।

निर्वाणं बौद्धानां कृते परमं लक्ष्यम् अस्ति। चतुर्णां आर्यसत्यानां सम्यक् ज्ञानं प्राप्तव्यं भवति। अष्टाङ्गमार्गः अवश्यं अनुसरणीयम्। अष्टाङ्गमार्गेण निर्वाणमार्गं प्रविष्टुं शक्यते। एषः मार्गः जनान् सम्यक् मार्गे मार्गदर्शनं करोति। बौद्धधर्मः ज्ञानधर्मः, ज्ञानिनां धर्मः इति उक्तम्, संसारः दुःखी इति केवलं ज्ञानिनः एव ज्ञायन्ते। तृष्णा शोकस्य कारणम्। तृष्णायाः कारणे पुनः पुनः जन्मं ग्रहीतव्यम्। तृष्णामुक्तिः सर्वेषां लक्ष्यं भवति। तदर्थं ज्ञानिनः निर्वाणसाधनं कर्तुं आवश्यकम्।

परिसमापनम्

अतः अन्ततः एतत् वक्तुं शक्यते यत्, निर्वाणं सर्वसंसारबन्धनमोक्षः सर्वान्तोऽत्र च। क्रोधद्वेषकामविमोचनं निर्वाणम्। निर्वाणं सर्वस्वरूपप्रलयं भवति। अतः निर्वाणप्राप्तिः मानवजीवनस्य जन्मफलं भवति।

सन्दर्भ-ग्रन्थसूची

- Dr. Anamika Gupta, Concept of Nirvana in Buddhist Philosophy, Publisher : Notion Press, Edition: 2018.
- Author : Manish Meshram, The Origin and Development of Buddhist Philosophy, Publisher : Kalpana Prakashan, New Delhi, Edition: 2020.

- Nirvana, Buddhist Philosophy and Religion, Swami Vidyaranya, West Bengal State Book Council, India, Page-160, Published: March 1984.
- Dr. Shukomal Barua and Suman Kanti Barua - Introduction to Tripitaka, Page-104, Chapter - Tripitaka History, Bangla Academy December- 2000.
- A History of Indian Philosophy, S.N. Dasgupta, pp, 100-01.

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

शाकुन्तले पर्यावरणसंरक्षणम्

डॉ. शैलेंद्र कुमार साहू*

सम्प्रति पर्यावरणं पूर्णम् असन्तुलितं जातमस्ति। अस्य संरक्षणम् आवश्यकमस्ति। परं किम् एकवारं यदि पर्यावरणं सुरक्षितं भविष्यति तर्हि सर्वाषां पर्यावरण-समस्यानां समाधानं भविष्यति इति चेन्न। भवन्तः पर्यावरणसमस्येति प्रकरणे पठितवन्तः यत् सर्वप्रमुखा समस्या अस्ति सामाजिकी, नैतिकी, प्राकृतिकी, जनसंख्या च। समस्याः एताः तदैव समधिगताः भविष्यन्ति यदा निरन्तर-प्रयासः भविष्यति। अतः आवश्यकं भवति यत् पर्यावरणस्य शिक्षा सर्वेभ्यः सामाजिकेभ्यः बाल-युवा-वृद्धिभ्यश्च दातव्या। अस्याः शिक्षायाः प्रसारः विविधेषु अभिकरणेषु एव आधारितः अस्ति। अतः अत्र तेषामभिकारणानां विषये चिन्तितं वर्तते। अस्मिन् शोधपत्रे कालिदासस्य समये पर्यावरणं प्रति विचारः प्रस्तुतम्।

कविकुलगुरुः कालिदासः महाकाव्यानां, नाटकानां, मुक्तककाव्यानाञ्च सिद्धः कविः। यो हि इत्येतेषु रूपेषु संस्कृतसाहित्यस्य इतिहासान्तर्गतमनन्यं स्थानं बिभर्ति। कालिदासस्य परवर्तिनः ये कवयः आसन् ते सर्वे कालिदासस्यानुकरणं कुर्वन्ति स्म तथापि कालिदासस्य स्थानं प्राप्तुं न प्रभवन्। कालिदासस्य काव्यशैली स्वस्मिन्नेवाद्वितीयाऽऽस्ति, तदर्थमेवानेकैः कविभिः गीयते यत् परवर्तिनः कवयः कालिदासस्य मुक्तकण्ठेन प्रशंसां कुर्वन्ति। केनचिदेवमप्युक्तं यत् कवीनां गणना सन्दर्भे कालिदासः कविषु श्रेष्ठतमो वर्तते। तथोक्तम् -

पुरा कवीनां गणना प्रसङ्गे कनिष्ठकाधिष्ठितकालिदासः।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावाद् अनामिका सार्थवती बभूव।।

महाकविकालिदास्य कालविषये यत्प्रामाणिकाः कृतयः सन्ति यत्र कालगणनायाः उल्लेखो नास्ति। 'कीर्तिर्यस्य स जीवति' इत्यत्र विषये येऽस्माकं प्राचीनाः मनीषिणः विश्वासं कुर्वन्ति तेऽपि अत्र न किमपि उल्लिखितवन्तः। कालिदासः नास्त्यत्रापवादरूपः। तेनैव तस्य कालनिर्धारणस्य विषये न किमपि सारल्यं अपितु काठिन्यम् अनुभूयते तथापि पुष्टप्रमाणानुसारं तथ्यानुसारञ्च कालिदासस्य स्थितिकालः ई.पू. प्रथमा शताब्दी मन्यते इति मतं समीचीनं तर्कसङ्गतञ्च।

अभिज्ञानशाकुन्तलं न केवलं महाकवेः श्रेष्ठरचना, अपितु समग्रसंस्कृतसाहित्यस्य वाङ्मयस्य च सर्वोत्कृष्टतमा रचना द्योतते। यत्र एकतो भारतीयपरम्परायां '**काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला**' इति कथनं कृत्वा अस्य शाकुन्तलस्य महनीयतोच्यते वा तद्गुणानां गानं गीयते। कुत्रचित् पाश्चात्य विद्वान् जर्मन्देशीयः महाकविः गेटे कथयति यत् - '**ऐश्वर्यं यदि**

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, साहित्य विभाग, सं.वि.ध.वि. संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)

वाञ्छसि प्रिय सखे! शकुन्तलं सेव्यताम्। ' इत्यमुष्याः रसास्वादनाय सम्पूर्णसहज्जगदाजुहुवे। शाकुन्तले सप्ताङ्कास्सन्ति, येषु पुरुवंशीयनरेशस्य दुष्यन्तस्य एवम् ऋषिकण्वस्य च दुहितुः शकुन्तलायाः प्रणयकथायाः मनोरमं वर्णनं कृतमस्ति।

'तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कः' इत्यस्यानुसारं चतुर्थेऽङ्के कालिदासस्य प्रतिभायाः वास्तविकं स्वाभाविकं रूपं च तस्य विलासितारूपेण दृष्टिगोचरो दृश्यते। चतुर्थेऽङ्के कालिदासस्य काव्यप्रतिभायाः अनुपमेयनाट्यकौशलस्य तथा अप्रतिमप्रकृतिप्रेम्णः इत्यादीनां साक्षात्कारो भवति। प्रस्तुतेऽस्मिन् शोधपत्रे कालिदासस्य पर्यावरणस्य चिन्तनम् एवं पर्यावरणं प्रति तस्य संवेदनं प्रकाशयन् अहं तस्य आधुनिकपर्यावरणस्य चिन्तनम् इत्यस्य आधारसिद्धिं कर्तुं चिकीर्षामि।

कालिदासस्य प्रकृतिं प्रति स्नेहस्य निरूपणेन तस्य पर्यावरणचिन्तनमवज्ञातुं शक्यते, ततः प्राक् पर्यावरणं किमिति ? पर्यावरणस्य शाब्दिकोऽर्थः – परि + आवरणम् अर्थात् परितः येन वयमावृताः स्मः, तत् पर्यावरणम् इति। अनेन प्रकारेण ज्ञायते यत् सजीवानां परितः प्राप्यमानाः मानवाः तेषां स्थानम्, वस्तुनि प्रकृतयश्च इत्येते पर्यावरणस्य कारकरूपेण वर्तन्ते। पर्यावरणसंरक्षणस्याधिनियमः १९८६ तस्य धारा २(ए) इत्यनुसारं पर्यावरणान्तर्गतं जलं, वायुः, भूमिः एवम् अन्तर्सम्बन्धः वर्तते यत् जलस्य, वायोः, भूमेः, मानवजीवनस्य, प्राणीनां, वृक्षाणां, सूक्ष्मजीवानामपरञ्च सम्पतेः मध्ये विद्यमानाः सन्ति। महाकविकालिदासः प्रकृत्या सह तादात्म्यस्य अनुभवं करोति। एवञ्च तस्य तादात्म्यं वर्तते तदस्मिन् चतुर्थेऽङ्के स्वस्य पूर्णतागौरवाय व्यक्तं – स्पष्टञ्च भवति। तत्र प्रकृतेः प्रत्येकमुपादानं सजीवम् एवं संवेदनशीलं भवितुमर्हति। चतुर्थाऽङ्कस्यारम्भः मानवानाम् एवं प्रकृतेरन्तर्सम्बन्धरुत्पद्यते, यत्र उभे सख्यौ परस्परं वार्तालापं कुर्वत्यौ देवार्चनायै पुष्पवाटिकायां पुष्पाणां चयनं कुरुतः – '**ततः प्रविशतः कुसुमावचयं नाटयन्त्यौ सख्यौ।**'[१]

कालिदासः प्रकृतिं सजीवाम् एवं मानवीयभावनाभिः अतिसंयुक्तां मन्यते, यच्चाद्यत्वे प्रामाणिकं वैज्ञानिकञ्च तथ्यं वर्तते। अस्माकं देशस्य महान् वैज्ञानिकः जगदीशचन्द्रबसुः तेनापि 'कैस्कोग्राफ' नामकस्य यन्त्रस्य निर्माणं कृत्वा केभ्यश्चिद् वर्षेभ्यः पूर्वमेव साधितमिदं यत् वृक्षाः, लताः इत्येतेऽपि संवेदनशीलाः वर्तन्ते। इयं वैज्ञानिकस्थापना कालिदासस्य प्रकृतेः सम्बन्धितमान्यतायाः प्रमाणं करोति। मनुष्यः प्रकृतिश्चान्योऽन्याश्रितः वर्तते। उभयोः प्रत्येकम् एवञ्च प्रतिविनिमयः दृश्यते। कालिदासस्य शकुन्तला तु वृक्षान् सहोदराः भ्रातरः एवं लतां स्वभगिनी इति सम्बन्धेन कल्पनां करोति। प्रकृतिस्तु मानवानां संरक्षिका एवम् उपदेशिका च वर्तते। तस्याः मनोरमाक्रोडे मानवाः न केवलं स्वस्य भरणं पोषणं कुर्वन्ति, अपितु जीवनदर्शनमपि प्राप्नुवन्ति। चतुर्थेऽङ्के समयस्य ज्ञानार्थाय बहिरागतः शिष्यः सूर्यचन्द्रयोः इव तेजत्वात् उभयोः एकस्योदयं द्वितीयस्यास्तङ्गमने प्रकृतेः शाश्वतनियमस्य साक्षात्कारं कारयति –

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनामाविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु।।[२]

तस्य यः साक्षात्कारः वस्तुतः संसारस्य चिरन्तनं सत्यमस्ति।

निसर्गकन्या शकुन्तलात्वत्यन्त–सुन्दरी वर्तते एवञ्च प्रकृतेः अनन्या प्रेमिकाऽपि वर्तते। वस्तुतः प्रकृतिरेव तस्याः सहचरी संरक्षिका च अस्ति। अनेन कारणेन सा प्रकृतिमनन्यभावेन स्नेहं करोति। यत्र कालिदासस्य शकुन्तलायाः श्वसुरस्य गृहगमनकाले स्वप्रियां भगिनीं लतां वनज्योत्स्नां ततः तां मिलितुं न विस्मरति। 'तात, लताभगिनीं वनज्योत्स्नां तावदामन्त्रयिष्ये', तत्र आश्रमस्य पशवः, पक्षिणः, वृक्षाः, लताः स्वसामर्थ्यानुरूपं शकुन्तलायाः साहाय्यं कुर्वन्ति तथा तस्याः विरहेण वियोगत्वात् व्याकुलाः भवन्ति। आश्रमस्थिताः वृक्षाः तस्याः शृङ्गाराय वस्त्राभरणं लाक्षारसं च प्रददति।

तत इदानीम् –

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डुतरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपरागसुभगो लाक्षारसः केनचित्।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै-
र्दत्तान्याभरणानि नः किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः।।[३]

विगमनकाले तु कोकिलस्वरेण वृक्षाः गमनस्य अनुमतिं च ददति। कोकिलरवं सूचयित्वा –

अनुगतगमना शकुन्तला
तरुभिरियं वनवासबन्धुभिः।
परभृतविरुतं कलं यथा
प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम्।।[४]

शकुन्तलायाः वियोगतः सम्पूर्णा प्रकृतिः स्वस्य कार्यं विहाय वियोगव्यथया तपति पीडां चानुभवति –

उद्गगलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः।।[५]

शाकुन्तलस्य चतुर्थेऽङ्के प्रकृतिशकुन्तलयोः पारस्परिकं सौहार्दं स्वस्य पराकाष्ठायां गमनं करोति। शकुन्तला वृक्षान् जलं पाययित्वा तदनन्तरमेव स्वयं जलं स्वीकरोति स्म, अलङ्करणस्य तत्करणाभिलाषी वर्तते, तथापि प्रेमाधिक्येन तेषां वृक्षाणां पर्णस्य छेदनं चयनं न करोति स्म, पुष्पोद्गमनकालस्योत्सवे प्रसन्ना भवति। महर्षिः कण्वः तेभ्यः वृक्षेभ्यः शकुन्तलायाः पतिगृहगमनायानुमतिं याचते। भो भोः संनिहितास्तपोवनतरवः!

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।[६]

यत्र वियोगकाले शकुन्तला उटजपर्यन्तचारिणी, गर्भमन्थरा, अनघप्रसवा, मृगवधूः इत्येतस्य

सुखपूर्वकं स्वस्य सन्तानोत्पत्तये उत्कण्ठिता भवति, तत्र विगमनकाले शकुन्तलायाः मार्गमवरुध्य स्वपालितः मृगः स्वस्नेहस्य परिचयं ददाति। तथ्यं यदस्ति शाकुन्तलस्य चतुर्थेऽङ्के पर्यावरणस्य प्रत्येकमुपादानं यच्च ते वृक्षाः, वनस्पतयः, नद्यः, पशवः सर्वेषां मनुष्येण सह तादात्म्यं स्थापितं कृतं वर्तते, एवञ्च मानवप्रकृतिभ्यां सह तादृशः सम्बन्धः महाकविकालिदासस्य पर्यावरणचैतन्यस्य आधारः विद्यते।

भूमण्डलीकरणस्य अस्मिन् युगे सकलं विश्वम् एकम् आपणिस्थानरूपेण परिवर्तितमभवत्। प्रत्येकः राष्ट्रः स्वस्य व्यक्तिगतस्वार्थाय पर्यावरणस्य चिन्तां विहाय प्रकृत्या सह असम्यक् आचरणं करोति। परिणामतः विश्वेऽस्मिन् नैकाः समस्याः उपस्थिताः सन्ति। वृक्षाणां कृते, अन्यजीवकृते, नदीनां कृते मानवानाम् अत्याचारः व्यापकप्रभावरूपेण अद्य वर्तमाने भयावहसमस्यारूपेण उपस्थितः वर्तते। ग्रीनहाउस गैसानि– CO_2, CO, CH_4, NO, O_3 एवञ्च CCI_4 इत्येतेषां कारणेन ग्लोबलवार्मिंग, ओजोनक्षरण, अम्लवर्षा इत्येतादृशी समस्या विश्वस्य कृते चिन्तारूपा वर्तते। इत्येतासां समस्यानां समाधानमनेकवर्षपूर्वमेव प्रथमा शताब्दी ई.पू. इत्यत्र महाकविना कालिदासेन स्वस्याद्वितीये नाटके शाकुन्तले चतुर्थेऽङ्के प्रकृतेः चित्रणविषये व्यञ्जितं कृतमासीत्। प्रकृत्या सह तेषां तादात्म्यं पर्यावरणजनितसम्पूर्णसमस्यानामेकमात्रमेवमौषधिः रूपमुपायः वर्तते। यदा मानवः प्रकृत्यै संवेदनशीलः भविष्यति तदा तत्कालतः एव पर्यावरणजनित–समस्यानां तन्मूलनमपि प्रारप्स्यते। इत्थमेव अस्य चतुर्थाङ्कस्योपदेशोऽस्ति। अयमुपदेशः विश्वस्याभ्युदयाय मूलं वर्तते। तात्पर्यं तु इदमेव वर्तते यत् – शकुन्तलायाः स्वस्य सहवासिनः वृक्षाः, वन्यजीवाः, नद्यः, तान् प्रति यत् स्वाभाविकः पारिवारिकः स्नेहः स्वजनसदृशं वा प्रेम भवतु, तत्रोभयोद्देश्ये मानवानां कल्याणमेवं मानवानां प्रकृतेश्च अन्योऽन्याश्रयं सिद्धं भवति। 'कनिष्ठकाधिष्ठितकालिदासः' स्वस्मै हेतवे सम्पूर्णतया सफलोऽभवत् वा सर्वमान्योऽभवत् इति।

भारतवर्षस्य परिप्रेक्ष्ये स्वतन्त्रतायाः अनन्तरं भारतदेशः कालिदासस्यास्मिन् तथ्ये स्वीकृतिं प्रददाति एवञ्च तस्याभिमतमाचरति। भारतीयसंविधानान्तर्गतमस्माकं संविधानकर्तृभिः अनुच्छेदः ४८– ए इत्यत्र नीतिनिर्देशकस्य रूपेण, अनुच्छेदः ५१–ए (जी) इत्यत्र मूलकर्तव्यस्य रूपेण तथा अनुच्छेदः २१ एवं ३२ इत्यत्र मौलिकाधिकाराणां[७] रूपेण पर्यावरणसचेतनायाः प्रति अवधानतायाः परिचयः प्रदत्तः। संविधानमतिरिच्यापि विधेः निर्माणस्य माध्यमेन भारते पशुक्रूरता अधिनियमः १९६० इति वन्यजीवसंरक्षणस्याधिनियमः १९७२ तथा पर्यावरणसंरक्षणाधिनियमः १९८६ इत्यादिविधीनां[८] निर्माणेन पर्यावरणसंरक्षणाय समीचीनः प्रयासः कृतः वर्तते। विश्वस्य सन्दर्भान्तर्गतं कथयितुमपि शक्यते यत् सकलं विश्वं वर्तमाने पर्यावरणसंरक्षणाय तत्पोषणाय प्रयासः करोति। स्टाकहोम घोषणा (Stockhoim Declaration) १९७२, रियो घोषणा १९९२, कोपेन हेगन क्लाइमेंट चेञ्ज, नगोया जैव विविधता सम्मेलनं २०१० इत्यादयः प्रयासाः वर्तन्ते। इत्थं समस्तपर्यावरणसम्बन्धि–उपायानां मूलरूपेण कालिदासस्य सकारणरूपपर्यावरणचेतनया मान्यतया सह आवश्यकः न्यायः भविष्यति। एवमयं न्यायं कर्तुम् अस्माकं महाकविकालिदासं

प्रति सत्यरूपा श्रद्धाञ्जलिः भविष्यति।

निष्कर्षतः ज्ञायते महाकविकालिदासः तस्याभिज्ञानशाकुन्तलनाटकस्य चतुर्थेऽङ्के समस्तप्रकृतेः चित्रणं कालिदासस्य पर्यावरणचेतनायाः उदाहरणमस्ति एवञ्च यदि विश्वः कालिदासस्य पर्यावरणीयचेतनामाश्रित्य गाम्भीर्येण विचारं करोति, चेत् बहुमुखी विकासः भवितुं शक्नोति, अर्थात् कालिदासस्य पर्यावरणचेतनाविश्वस्याभ्युदयाय साक्षात्कारणभूता भवितुमर्हति।

सन्दर्भाः

१. कपिलदेव द्विवेदी, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, चतुर्थाऽङ्कस्य प्रारम्भः, पृ. १८०

२. कपिलदेव द्विवेदी, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, २-४

३. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, ४-५

४. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, ४-

५. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, ४-१२

६. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, ४-९

७. सुभाषकश्यपः - भारतस्य संविधानम्।

८. प्रो. एच. एनं. तिवारी महोदयस्य - पर्यावरणस्य विधिः।

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

कर्णचरित्रस्य भारतीयसमाजस्योपरि प्रभावः

देवाशिष अग्रवाला*

महाभारते सामाजिकविषयाः

परिवर्तिताधुनिकसमाजे महाभारतम् एकं देदीप्यमानम् अमूल्यरत्नं भवति। यत्र व्यवहारः, नीतिः, सदाचारः, धर्मः, सुख-दुःखप्राप्तेः साधनम्, त्यागस्य महत्त्वम्, न्यायस्वरूपम्, सत्यम्, राजनीतिः, परोपकारः, क्षमा, अहिंसादिविषये विस्तृततया वर्णितमस्ति। अयमेव तत्र महाभारते वर्णितेषु प्रमुखपात्रेषु कर्णः सिहंरूपमावहति। अतः तस्य चरित्रपरिशीलने उपर्युक्तविषयाः तथा इतोऽपि गहनतथ्यानि ज्ञातुं शक्नुमः।

महाभारते कर्णः

महाभारते बहूनि पुरुषपात्राणि सन्ति। तेषु पुरुषपात्रेषु कर्णस्य पात्रम् अन्यतमम् अतिविशिष्टं च वर्तते। सः अद्वितीययोद्धा दानशौण्डो वचनबद्धादर्शव्यक्तिः च आसीत्। तदीयम् असाधारणं रूपं भव्यं संस्थानमाकर्षकञ्च तेजः सर्वदा सर्वलोकादृतम् आसीत्। अतः लोकास्तं सूर्यतनयमपि प्रोचुः।

दुर्वासामहर्षेः वरप्रभावात् सूर्यानुग्रहेण कुन्तीदेव्यां समुत्पन्नोऽयं कर्णः जन्मतः एव नष्टजातकः अभवत्। अनन्तरकाले परशुरामस्य सुश्रूषया अस्त्रशस्त्रादिविद्यापारङ्गतोऽभूत्। अस्त्रशस्त्रविद्याया नैपुण्यप्रदर्शनसमये दुर्योधनसख्यं प्राप्य अङ्गराज्यस्य राजा अभवत्। कुरुक्षेत्रसंग्रामे यावत्पर्यन्तं भीष्मपितामहः युद्धं करोति तावत्पर्यन्तम् अहं संग्रामक्षेत्रं नागच्छामि इत्युक्त्वा भीष्मद्रोणयोः मरणानन्तरमेव कौरवसैन्याध्यक्षो भूत्वा पञ्चदिनानि युद्धमकरोत्। अस्मिन्नेव समये ब्राह्मणवेषधारिणे इन्द्राय स्वकवचकुण्डलानि दानं कृत्वा दानगुणं प्रदर्शितवान्। गुरोः शापवशात् अस्त्राणि सर्वाणि निर्वीर्याणि जातानि सत्यपि युद्धं कृत्वा स्व वीरत्वं प्रदर्शितवान्। अनन्तरं बहूनां शापानां प्रभावेण कर्णः अर्जुनस्य हस्ते मरणं प्राप्य स्वर्गस्थोऽभूत्।

एवं कर्णस्य दान-दया-वीरत्वम् इत्यादीन् गुणान् दृष्ट्वा जनाः तं दानवीरशूरवीरकर्णः इति कीर्तितवन्तः।

कुन्त्याः गर्भात् सूर्यस्यांशेन कवचकुण्डलाभ्यां सह जातः पुत्रोऽयमासीत्। आदौ अस्य नाम वसुषेणः इत्यासीत्। परन्तु यदाऽयम् इन्द्रेण प्रार्थितः सन् स्वकवचकुण्डलानि तस्मै

* शोधच्छात्रः, पुराणेतिहासविभागः, राष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः तिरुपतिः, आन्ध्रप्रदेशः

प्रदत्तवांस्तदाऽस्य नाम वैकर्तनः इत्यभूत्। कुन्तीम् एनं प्रसूय जले त्यक्तवती। अस्य कृते किमप्यदेयं नासीत्। इन्द्राय कवचादि दत्त्वा तस्मात् शक्तिनामकम् अस्त्रं प्राप्तवान्। गङ्गाप्रवाहे प्रवाहितोऽयं सूतेनाऽधिरथेन तद्भार्यया राधया च पालितः सन् राधेयनामाऽभूत्। द्रोणात् अस्त्रविद्याप्राप्तिकालेऽर्जुनेनाऽस्य स्पर्धाऽभूत्। रङ्गभूमौ अर्जुनेन सह युद्धोद्यतोऽयं सूतपुत्रत्वात् कृपाचार्येणाऽपमानितोऽभूत्। दुर्योधनेनाऽयम् अङ्गराजरूपेण अभिषिक्तोऽभूत्। द्रुपदेन पराजितः सन् पलायितवान्। द्रौपदीस्वयंवरे आगत्य सूतपुत्रत्वात् द्रौपद्या निराकृतो बभूव।

राजसूयदिग्विजयेऽयं भीमेन पराजितः सन् युधिष्ठिरस्य राजसूययज्ञे आगतवान्। द्यूतसभायां द्रौपद्यां वस्त्रहरणार्थं दुःशासनम् आदिष्टवान्। वनवासाय गतानां पाण्डवानां वधाय दुर्योधनः कर्णं प्रचोदयमास। श्रीकृष्णेनाऽनुरुद्धोऽपि कौरवपक्षे स्थातुं निश्चितवान्। कुन्त्यै अर्जुनव्यतिरिक्तान् चतुरः पुत्रान् नैव मारयामि इति वचनं दत्तवान्। शरशय्यायां शयानस्य भीष्मस्य समीपे गत्वा स्वस्य प्रणमाञ्जलिं समर्पितवान्। द्रोणे मृते सति दुर्योधनेन सेनापतिरूपेण अभिषिक्तोऽभूत्।

कौरवसेनायां मकरव्यूहं रचयित्वा पाण्डवसेनां विनाशितवान्। शल्यं सारथिं कृत्वा युद्धाय निर्गतः। अर्जुनेन सह द्वैरथयुद्धं कृत्वा सर्पमुखबाणेनाऽर्जुनस्य किरटीं पातयामास। रथचक्राणां भूमिप्रवेशात् हेतोस्तस्य रथादवतरणं जातम् तदाऽस्त्रप्रयोगं नैव कर्तुम् अर्जुनमनुरुद्धवान्। अर्जुनेन निहतोऽभूत्। मरणान्ते व्यासेन गङ्गाजले प्रकटितोऽभूत् यत् स्वर्गे गत्वाऽयं कर्णः सूर्ये सम्मिलितोऽभूदिति।

कर्णचरित्रस्य भारतीयसमाजस्योपरि प्रभावः

कर्णचरित्रस्य चारित्रिकगुणानाम् अध्ययनावसरे दोषान् दूरीकृत्य गुणविवेचनकरणेनैव निष्कर्षेण ज्ञायते कर्णजीवनमाहात्म्यम्, तस्य व्यक्तित्वञ्च। कर्णस्य समस्तजीवनं नवयुवकानां प्रेरणदायकं भवति । कर्णं कौरवेभ्यः पृथक्कृत्य स्वतन्त्रव्यक्तित्वधारेण शीलतां ग्रहीतुं शक्नुमः। कर्णस्थाः केचन गुणाः समाजाय शुभसन्देशकारकाः भवन्ति।

१. संयमितनियमबद्धजीवनयापनसन्देशः।

२. कर्मणि विश्वासप्रकटनसन्देशः।

३. त्यागस्य सन्देशः।

४. दुष्टसमाजात् दूरे तिष्ठत्विति सन्देशः।

५. असत्यसम्भाषणं मा कुर्विति सन्देशः।

६. आत्मप्रशंसार्थं गुरुनिन्दा न करणीयमिति सन्देशः।

७. नारीजनानाम् अवमानं न करणीयमिति सन्देशः। इत्यादिगुणैः न करणीयमिति।

संयमितनियमबद्धजीवनयापनसन्देशः

कर्णस्य नियमपूर्वकजीवनं पूर्णजीवनादर्शनमिव गोचरति। स्वनियमाचरणविरुद्धकार्याणि

कृत्वा कदापि दोषं प्राप्तुं न इच्छति। कर्णस्य जीवनप्रेरणात् युवका: अपि अनुशासनजीवने रता: भवेयु:। दैनिकव्यवहारे सत्य–अहिंसा–अस्तेय–पूज्यानां समादर: इत्यादीनामाचरणात् जीवनं सुखमयं भविष्यतीति सन्दिशति। कर्णजीवनात् ज्ञायते यत् कदापि राजकीयलब्ध्यै स्वनियमोल्लङ्घनं न कार्यमिति । कर्ण: स्वजीवनान्ते दुर्योधनेन कृत अधर्म– अनीतियुक्ताचरणं विज्ञाय खेदं अनुभूतवान्। दुष्टजनैस्संसर्गोऽपि त्यजत्विति प्रबोधयति समाजाय।

कर्मणि विश्वासप्रकटनसन्देश:

कर्णस्य चरित्रानुसारेण विज्ञायते यत् व्यक्ते: व्यक्तित्वं स्ववंशानुक्रमाधारेण नैव सम्भविति केवलं स्वयंकृतापराधात् एव जायते इति। कर्ण: स्वयं वंशानुक्रमात् सूर्यस्य पुत्र: परन्तु कालवशात् सूतकुले पालित: इति कारणात् सूतसमाजानुरूपदासता, शिथिलता, क्षीणपराक्रम:, अनावश्यकविनयशीलता इत्यादि गुणै: संवर्धितोऽस्ति। परन्तु स्वसहजात लक्षणै: स्वत: सिद्धपराक्रमेण च अनितरसाध्यधनुर्विद्यामभ्यस्य अग्रगण्यरूपेण स्थितवान्। व्यक्ते: पराक्रमस्य कारणं न जाति:, न कुलञ्च केवलम् आत्मविशासेन दृढ़प्रयत्नेन यदि कार्यं कुर्मश्चेत् सर्वं साध्यतेति समाजाय कर्ण: प्रबोधयामास। अस्माकं देशोऽपि शताधिकवर्षाणि दास्यशृङ्खलायां बद्धो आसीत् परन्तु कठोरपरिश्रमेण, विश्वासेन सर्वे भारतीया: एकत्रभूय स्वराज्यसंरक्षणमकुर्वन्। कठोरपरिश्रमेण असम्भकार्यमपि सुसम्भवं भविष्यतीति कर्णचरित्रात् ज्ञायते। भारतदेशेऽपि उच्च–नीच, जातिभेदा: यदा म्रियन्ते तदैव भारतस्योन्नतिरिति अवगन्तव्यम्।

त्यागस्य सन्देश:

आत्मकेन्द्रितमनुष्य: स्वसम्पूर्णजीवनस्य सर्वान् कार्यकलापान् स्वेन निर्दिष्टमार्गेण कुर्वन्नस्मीति चिन्तयति। अनया स्वार्थ बुद्धया त्यागपदस्य अर्थमेव विस्मरति। स्वार्थसंग्रहभावना समाजे भ्रष्टाचारं, अपराधं, अनैतिकताञ्च वर्धयति। यदि व्यक्ति: स्व इति पदात् बहिरागत्य सर्वे इति पदं जानाति तर्हि परोपकारभाव: समागच्छत्येव। नि:स्वार्थसेवा, त्यागस्य शिक्षा कर्णजीवनात् प्राप्यते। दानवीरताविषये कर्णस्यापेक्षया अस्मिन् जगति न कोऽपि समर्थ: इत्युक्ते नास्ति संशय:। स्वप्राणरक्षककवचम् अन्येभ्य: दत्त्वा कर्ण: दानवीरताया: श्रेष्ठोदाहरणरूपेण विराजते। अधुना सर्वे जना: समाजे कर्ण इव त्यागबुद्धिं प्राप्य परेषां सहायकरणे, परोपकारकरणे च लग्ना: भवेयु:। श्रीकृष्णस्य उपदेशानुसारेण विना कर्म फलं न अपेक्षितव्यमिति ज्ञानमपि कर्णचरित्रे दृश्यते। महापुरुषाणां चारित्रिकगुणा: अस्मभ्यम् उचितमार्गे गमनं, नियमनीतिपूर्वकजीवनयापनम्, अवगुणै: जागरूकता, दुर्गुणदूरीकरणमित्यादि उपदेशा: प्रयच्छन्ति।

कर्णस्य जीवनेऽपि केचन नीतिविरुद्धदोषा: अपि उपलक्ष्यन्ते। कर्णोऽपि स्वगुणान् अङ्गीकृत्य न कुर्वन्त्विति समाजाय सन्देशं ददाति।

दुष्टसमाजात् दूरे तिष्ठत्विति सन्देश:

धर्मज्ञ:, नीतिज्ञ:, महान् पराक्रमशील: कर्ण: कौरवपक्षे स्थित्वा स्वनाशनमुपागमत्।

उक्तमस्ति संसर्गजा दोषगुणाः भवन्ति अर्थात् सज्जनसंसर्गात् गुणाः कुजनसंसर्गात् दोषाः भवन्तीत्यर्थः। अतः यः कोऽपि मानवः स्वजीवनं समीचीनमार्गे प्रापयितुम् उत्तमपन्था सुजनसमागम एव नास्त्यन्या इति कर्णचरित्रात् ज्ञायते।

असत्यसम्भाषणं मा करोतु इति सन्देशः

सत्यमेव जयते अयं भारतीयदर्शनस्य मूलमन्त्रः अस्ति। सृष्ट्यारम्भात् एतावत् पर्यन्तं यदाकदापि अधर्मः प्रधानरूपेण तिष्ठन्नपि अन्तिमे धर्मस्यैव विजयः इति निरूपितमस्ति। धर्मस्य मूलाधारस्तु सत्यमेव। कर्णः यद्यपि विद्यासमुपार्जनाय असत्यं उक्तवान् तथापि अवसरकाले तस्य विपरीतमेव अनुभूतवान्। अन्येषां हानिदायकासत्यमपि अन्ते नश्यतीति ज्ञातव्यम्। स्वस्वार्थसिद्ध्यै कदापि असत्यं न स्वीकुर्वितेति कर्णकृतदोषाः विज्ञायन्ते।

आत्मप्रशंसार्थ गुरुनिन्दा न करणीयमिति सन्देशः

स्ववास्तविकतामतिरिच्य अधिकात्मप्रशंसाकरणं दोषमिति धर्मशास्त्रवचनम्। आत्मप्रशंसया मानवस्य ज्ञानं नश्येत् गर्वं वर्धते च। गुरोः श्रेष्ठतां स्वकुर्वाणाः जनाः गुरुनिन्दा, अपमानञ्च दोषमिति परिगणयन्ति। स्वगुणपराक्रमा एव गुरुपराक्रमात् श्रेष्ठाः इति चिन्तनं मूर्खत्वस्य पराकाष्ठा इति कथ्यन्ते। कर्णस्य दोषोऽयं गुरुजनेषु तुच्छभावनामजनयन्। अतः कदापि गुरुनिन्दा न करणीया इति कर्णकृतदोषात् विज्ञायते।

नारीजनानाम् अवमानं न करणीयमिति सन्देशः

भारतीयधर्मशास्त्रेषु स्त्रीणां गौरवविषये महत्स्थानं विद्यते।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।

(मनुस्मृतिः, ३.५६)

स्त्री एव सृष्टेः मूलस्रोता वक्रदृष्या ताः पश्येम, विरुद्धाचरणम् आचराम चेत् तत्र परिणामाः स्वकुलं वंशञ्च समूलतया नाशयन्तीति कर्णचरित्रात् अवलोक्यते। सीतापमानकारणात् रामरावणयोर्युद्धं द्रोपद्याः अपमानकारणात् कौरवपाण्डयोः संवृत्तमिति इतिहासकथनम्। नारी माता पत्नी सोदरी पुत्रीरूपेण अस्माकं जीवने प्रधानपात्रपोषका भवति। निष्ठापूर्वकध्यानेन, धर्मानुसाराचरणेन श्रेष्ठताकारणेन देवीरूपेण प्रसन्नाः अपि भवन्ति। परन्तु दुःखविषयोऽयं भवति यत् अद्यतनसमाजे नारी स्वसम्मानरक्षणार्थं निरन्तरं सङ्घर्षते। मातुः संरक्षणे एव शिशुः सर्वतोमुखाभिवृद्धिः साधयिष्यतीति ज्ञातव्यम्। मातुः भयं दुःखञ्च समाजाभिवृद्धयै आटङ्कमुत्पादयति। अतः प्रयत्नेनापि स्त्रीणां रक्षणं करणीयम् नो चेत् कर्ण इव नाशः अवश्यमिति संसूज्यन्ते।

कर्णः सम्पूर्णजीवनं ज्वलन्निव ज्वालामुखीसदृशः परेषां सहायकरणे स्वजीवनमर्पितवानिति अवगम्यते। कर्णः सर्वदा भगवति विश्वासं कृत्वा दृढ़दीक्षया परिश्रमं कृत्वा स्वोन्नतिं साधयामास।

एवं रूपेण महाभारते सकलाः विद्याः समाहिताः। मूलप्रमाणात् सरसिकृत्य भविष्ये मनुष्याणां सामाजिकचरित्रे कथं सम्यक् ज्ञानं तथा व्यवहारादि अस्माकं हितसाधने सहायं भविष्यति तदेव अत्र मुख्यरूपेण मया प्रयासः कृतः।

सहायक-ग्रन्थसूची

- श्रीमद्भगवत्गीता, गीताप्रेस, गोरखपुर।
- महाभारतम्, गंगापुस्तकमाला, लखनऊ।
- मनुस्मृतिः, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणासी।
- श्रीमन्महाभारतम्, भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पुणे।
- महाभारत कथा, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९६०
- महाभारत, स्वाध्याय मण्डल पारडी (बलसाड), प्रथम आवृत्ति - १९६९

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

वाल्मीकिरामायणे धर्मस्यावधारणा

डॉ. पारमिता पण्डा*

रामायणस्य वैशिष्ट्यम्

श्रीमद्रामायणं वेदसदृशं न केवलं भारतीयवाङ्मये संस्कृतवाङ्मये वा विश्ववाङ्मयस्यापि श्रीमद्रामायणमेव आद्यं काव्यम्। प्रकृतकालेऽपि मानवजीवनस्य ये विषया: आचरणीया: ते सर्वेऽपि श्रीमद्रामायणे वर्णिता:। न केवलं सम्प्रदायवादिनां आधुनिक स्वभावतामपि रामायणम् आदर्शमेव। रामायणे दृष्टा: सूक्ती: अनुसृत्य जीवने अद्यापि सुखं हितं च भवत्येव। अद्यतनकाले धनाशय स्त्रीविषयक प्रेम्ना नैराश्येन दारिद्र्येण वा प्राप्त निर्वेदा: जना: जीवितं हातुं इच्छन्ति। तानपि रामायणं सत्पथे स्थापयितुं तेभ्योऽपि हितमुपदेष्टुं प्रभवति।

रामायणस्य रचनाकाल:

भारतीयं मतम्

श्रीमद्रामायणं कस्मिन्काले रचितमिति वाङ्मयचरित्रकारणां मतानि बहूनि विद्यन्ते। भारतीविश्वसस्तु रामावतारकाल: रामायणरचनाकालश्च तुल्यरूप: एव। रामायणादौ बालकाण्डे सर्गत्रये एष विषय: स्पष्टं निरूपित:। त्रिलोकतत्त्वज्ञ: नारद: कदाचित् लोकान् अनुगृहीतुं कृत संकल्प: वाल्मीकिं द्रष्टुमाजगाम। तदानीं ब्राह्मण: संकल्पेन वाल्मीके: मनसि कश्चन प्रश्न: उत्पन्न: अस्मिन् लोके इदानीं को वा सर्वगुण सम्पन्न: इति। तदानीमेव नारद: तत्रागत: आगतं नारदं दृष्ट्वा वाल्मीकि: स्वसन्देहम् उक्तवान्। ततो नारद: इक्ष्वाकुवंशे राम: एव सर्व गुणसम्पन्न: वर्तते इति सर्वान् रामगुणान् उक्तवान्। रामकथां च महता संक्षेपेण वाल्मीकिमुक्तवान् इति बालकाण्डे प्रथमसर्गे उपवर्णितम्।

धर्मशब्दार्थ:

धरति विश्वं इति धर्म:। धृञ् – धारणे (स्वादि उभयपदिसेद्) इति धातो: औणादिके 'मन्' प्रत्यये धर्म: इति रूपं भवति। महाभारतेपि धर्मशब्दस्य एष एवार्थ: निरुपित: –

धारणाद् धर्ममित्याहुधर्मेण विधृता: प्रजा:।
य: स्याद् धारणसंयुक्त: स धर्म इति निश्चय:।।

(महा., शान्तिपर्व १०६.११)

एवं धर्मशब्द: कर्ता अर्थे कर्मणि च प्रयोक्तव्य:। धर्मशब्देन धर्मवान् धर्मश्च वाच्य: अस्यार्थ: प्रयोजनमुद्दिश्य भिन्नस्थलेषु भिन्नार्थेषु प्रयुज्यते। अयं च ऋग्वेदे ऋत इति नाम्ना प्रयुक्त: इति

* सह-आचार्य:, पुराणेतिहासविभाग:, राष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालय:, तिरुपति:, आन्ध्रप्रदेश:

प्रभाकरदीक्षितेन उदाहृतम्।

भगवद्गीतासु, वौशेषिकदर्शने, मनुस्मृतौ च धर्मः एवं निरुक्तः। येन मार्गेण भौतिकजीवने अभ्युदयः मोक्षश्च आध्यात्मिके भवति स धर्मः इति।

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धः स धर्मः ।

(वैशेषिकसूत्र, १.१.२)

संसारात् प्रशस्यतरः श्रेयः निर्गतं श्रेयः निश्रेयसम् मोक्षः। धर्मेण मोक्षसिद्धिः भवतीति दार्शनिकैरपि अङ्गीकृतम्। धर्मशब्दस्य अद्यतनकाले मतमिति व्यवहृतस्य शब्दस्य पर्यायतया प्रयोगोपि दृष्टः। यथा – हिन्दुधर्मः ईशवीयधर्मः इत्यादि।

वाल्मीकिरामायणे जीवतः पुरुषस्य विकासशीलविचाररूपः सामाजिकजीवने अभिव्यक्तं कर्तव्यमिति अर्थद्वये प्रयोगो दृश्यते। देशकालावनुसृत्य क्रियान्वयं चानुसृत्य व्यक्तेः पद्धतिरपि परिवृत्ता भवति एवं धर्मस्य गतिरपि निश्चेया। किन्तु मौलिकोधर्मः देशकालानुरोधेन न परिवर्तनीयः। आचार्यरूपो धर्मस्तु परिवृत्तिमर्हति।

धर्मस्यप्रमाणम्

विद्वद्भिः सेवितो धर्मः नित्यमद्वेषरागिभिः।
हृदयेनाप्यनुज्ञातः यो धर्मस्तन्निबोधत ।।

(मनुस्मृति, २.१)

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ।।

(मनुस्मृति, १.१२)

वेदः सर्वस्यापि धर्मस्य प्रमाणम्। वेदविदां बुद्धिः आचारश्च धर्मविषये प्रमाणं तदनुसृत्यैव धर्मशास्त्राणि रचितानि कदाचित् यत्र श्रुति स्मृत्योः विरोधोपि भवति तत्र श्रुतिरेव प्रमाणम्। श्रुत्यास्मृत्या च यत्र धर्मो न निश्चितः तत्र धर्मविदां आचारः एव प्रमाणमिति धर्म प्रमाणविषये मन्वर्थमुक्तावली व्याख्यायां कुल्लूकभट्टेन स्पष्टम् उक्तम्। वर्णधर्माः आश्रमधर्माः यागदयः चत्वारिंशत् संस्काराः इत्यादयः सर्वेऽपि लौकिकाः धर्माः।

एतान् लौकिकान् धर्मान् अतीत्य आध्यात्मिक धर्माः भिन्नाः भवन्ति। ये च आध्यात्मिक धर्मानुवर्तिनः ते क्वचित् बाह्यधर्मबहिष्कृताः अपि निःश्रेयसं प्राप्नुवन्त्येव। धर्मज्ञानानादपि धर्माचरणं श्रेयस्करं भवति।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।
दश लक्षणानि धर्मस्य ये विप्रास्समधीयते।
अधीत्य चानुवर्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम्।।

(मनुस्मृति, ७.९२–९३)

दशविध स्वरूपो धर्णः प्रयत्नतस्सततमनुष्ठेयः धृतिरिति सन्तोषो धृतिः परेणापकारेकृते तस्य प्रत्यपकाराकरणं क्षमा। विकारहेतुविषयसन्निधानेऽप्यविक्रियत्वं दमः। मनसो दमनं दम इति सनन्दवचनात्। शीतातपादि द्वन्द सहिष्णुता दम इति गोविन्दराजः अन्यायेन धनादिग्रहणं स्तेयं च भिन्नमस्तेयं, यथाशास्त्रं मृज्जलाभ्यां देशशोधनं शौचं, विषयेभ्यश्चक्षुरादिवारणमिन्द्रियनिग्रहः शास्त्रादित्वज्ञानं धीः, आत्मज्ञानं विद्या, यथार्थाभिधानं सत्यं क्रोधहेतौ सत्यपि क्रोधानुत्पत्तिरक्रोधः एतादृशविध धर्मस्वरुपम्।

श्रीमद्रामायणे धर्मस्वरूपम्

श्रीमद्रामायणे धर्मस्वरूपं धर्मभेदाश्च बहवो निरुपिताः।

१. मौलिको धर्मः	२. वैयक्तिको धर्मः
३. वर्णधर्मः	४. आश्रमधर्मः
५. कुटुम्बधर्माः	६. समाजधर्माः
७. दाम्पत्यधर्मः	८. युद्धधर्मः

इत्यादयः बहवो धर्मभेदाः निरूपिताः। धर्मस्य स्वरुप ज्ञानार्थं क्वचिद् प्रत्युदाहरणरूपेण नास्तिक धर्मः अपि अयोध्याकाण्डे जाबालिवाक्येषु निरूपितः। एते लौकिकधर्माः मोक्षधर्मस्यापि निरूपणं वैराग्यनिरूपणं च यथावसरं तत्र तत्र श्लोकेषु दृष्टः। किन्तु मौलिकधर्मस्य वैय्यक्तिकधर्मस्य च विरोधाभासरूपा केचन सन्दर्भाः श्रीमद्रामायणे दृष्टाः। तेषां सन्दर्भाणां धर्ममीमांसा अद्यापि विद्वत्सु दृष्टः एव। ते च सन्दर्भाः –

१. बालकाण्डे – ताटकवधः

२. अयोध्याकाण्डे – दशरथेन रामाय राज्यप्रधान संकल्पः।
दशरथं प्रति लक्ष्मणस्य क्रोधः कोसल्यया अनुमोदनं च।
शृङ्गमेरुपुरे रामनिर्वेदः, दशरथनिन्दा।

३. अरण्यकाण्डे – रक्षोवध प्रतिज्ञा
शूर्पणखायाः कर्णनासच्छेदः।

४. किष्किन्धाकाण्डे – वालिवधः

५. उत्तरकाण्डे – सीतापरित्यागः
एतान् सन्दर्भान् अधिकृत्य विदुषां मतं उदाहृतम्।

धर्मस्य मूलस्थितिः

धर्मसूक्ष्मः अपि बहुधा दृष्टः सामाजिक हितार्थं वैय्यक्तिकधर्मस्य त्यागः श्रीमद्रामायणे बहुषु सन्दर्भेषु दृष्टः। क्वचित् मौलिकधर्मस्य कृतेपि वैय्यक्तिकधर्मत्यागः अपि दृष्टः। एवं विविधेषु सन्दर्भेषु बहोः कृते स्वल्पस्य त्यागः विज्ञस्य लक्षणमिति लौकिको धर्मः सर्वत्र अन्वेति एष विषयः प्रकृतानुकूलः यथा सन्दर्भं प्रतिविषयं व्याख्यातः।

एतेषां सर्वेषां धर्मभेदानां उदाहरणं साक्षात् श्रीरामः एव।

अयोध्याकाण्डे सीताहरणोद्यागे मारीचं सहायर्थं अश्यर्थयितुं रावणः प्रथमं मारीचाश्रमं आगतवान्। आगमनकारणं श्रुत्वा मारीचः रामो विग्रहवान् धर्मः तस्मै अपकारः न करणीयः स च आवयोः एव नाशाय भविष्यतीति बहुधा रावणं हितं उपदिदेश। अरण्यकाण्डे सप्तत्रिंशे सर्गे पञ्चविंशतिश्लोकैः मारीचोपदेशः विस्तरेण वर्णितः। तत्रायं मुख्यश्लोकः –

रामो विग्रहवान् धर्मः साधु सत्यपराक्रमः।
राजा सर्वस्य लोकस्य देवानां मघवानिव।।

(रामायण, अरण्यकाण्ड, ३७.१३)

रामधर्मिकत्वनिर्णये इतोप्यधिकं प्रमाणं न किञ्चिद् अपेक्षितम्। यतः मारीचरावणौ द्वावपि रामस्य शत्रू। रामपरोक्षं रामाय द्रोग्धुं रावणं आगतः मारीचोऽपि रामेण पूर्वमपकृतः। रावणरूपः बलवान् रामशत्रुः स्वयं मारीच सहायं रामद्रोहकरणे याचितुमागतः एवमुत्तमा अवकाशः प्रतिकारकरणे मारीचस्य नान्योलभ्यते। तथापि मारीचः रामगुणाभिज्ञः रावणसमक्षमेव रामं बहुधा प्रशसंसा। द्वयोः मेलने तृतीयय्य परिचितस्य निन्दा निष्कारणमेव अद्यकाले दृश्यते। पूर्वापराद्धस्य रामस्य विषये प्रतीकारकरणे अशक्तयोरपि प्रशंसाकरणे अवसरः एव न भवति तथापि मारीचः रामगुणानेव श्लाधितवान् इति तन्महत्त्वं अभिव्यक्तम्। रामस्य धर्मिकत्वं, रामास्त्रमहिमानं च बहुधा उक्त्वा रावणनिन्दां कृत्वापि रावणहस्ते वधादपि रामाद् वधः श्रेयान् इति निश्चित्य मारीचः वैय्यक्तिकं लौकिकधर्मं परित्यज्य रामाद्वधेन सुगतिः भविष्यतीति आध्यात्मिकं धर्ममिच्छन् मोक्षरूपमिच्छन् सीतापहरणे सहायकोऽभूत्। एवं विधस्य शत्रुभिरपि परोक्षेपि श्लाघ्यस्य रामस्य धर्मिकत्वं रामायण धर्मसर्वस्व निरूपकमिति राममधिकृत्य तत्पात्र निरूपणेन सकलस्य वैय्यक्तिकधर्मस्य निरूपणं भविष्यति इति रामपात्रवर्णनं क्रियते।

श्रीरामः

मर्त्यावतारः खलु मर्त्य शिक्षो। रक्षोवधायैव व केवलं विभोः।। इति।

अवतार प्रयोजनेषु भगवान् मनुष्यान् धर्माधर्मविवेकः गुरुषुगौरवं सत्यपालनम् इत्यादि सद्‌गुणान् शिक्षयितुं अध्यापयितुं च अवतारं निभर्तीति उदाहृतम्। भगवतः नारायणस्य एकविंशति अवतारेषु दशैव लोकविदिताः तेष्वपि श्रीकृष्णः श्रीरामः इति द्वौ मानवानामादर्श भूतौ। तयोरपि श्रीकृष्णः भगवान् तस्य लीलाः अनुकर्तुं कोऽपि न प्रभवति। भगवतः अवतारेषु केवल श्रीरामः एव मानवधर्ममनुसरन् महिमानं न कुत्रचित् प्रदर्शितवान्। अतः श्रीरामगुणाः सर्वैः मानवैः अनुसरणीयाः। न केवलमादर्शपालकः किन्तु आदर्श नायकः अपि। साधारणजीवितमपि आदर्शभूतं यापितवान्। कर्तव्यनिर्वहणे सर्वे स्वयं सप्तप्रश्नान् स्वानेव पृष्ट्वा मया किमेवं स्थीयते इति चिन्तयेयः। ते च प्रश्नाः –

१. मम कर्तव्यस्य किं वा लक्ष्यम्?

२. तत्र के वा प्रतिबन्धका:?

३. किम् मम कृषि: अत्र पर्याप्ता?

४. प्रतिबन्धनिवृत्तये किं मया कार्यम्?

५. अतीतकालादपि किं मम सामर्थ्यं अभिवृद्धम्?

६. एतावत्पर्यन्तं किं मया कृतं करणीयं च किं वर्तते इति।

राम: स्वजीवनमार्गे इमान् प्रश्नान् सर्वथा अनुष्ठितवान्। बालकाण्डादारभ्यैव एवं प्रवृत्ति: रामे दृश्यते। ताटकवधे एव एषा उदाहरणं दृश्यते। विश्वामित्र: प्रथमं ताटकां दर्शयित्वा एषा त्वया द्रष्टव्य इति राममुक्तवान् तत: ताटकवध: रामस्य कर्तव्यमासीत्। तदानीं सपदि राम: चिन्तितवान् एषा स्त्री किं मया हन्तव्या ? अस्या: हननेन दुरितं भविष्यतीति तत्र ताटकाया: स्त्रीत्वमेव तस्या: वधे प्रतिबन्ध: आसीत्। तदा विश्वामित्र: तत्संशयं ज्ञात्वा तस्या: वधेऽपि दोषो न भवति एषा प्रजापीडका राज्ञा प्रजारक्षणे क्वचित् स्वदोषमपि कार्यं करणीयमेव विष्णुरपि देवरक्षार्थं भृगुपत्नीं हतवान् इति रामं कर्तव्यं बोधयामास विश्वमित्र वाक्यमेव राम सन्देशरूपं प्रतिबन्धकस्य निवर्तकमभूत्। (रामा. बा., २५.१७–२१)

नृशंसमनृशंस वा प्रजारक्षणकारणात्।
पातकं वा सदोषं वा कर्तव्यं रक्षता सदा।।
राज्यभारनियुक्तानामेष धर्म: सनातन:।
अधर्म्यां जह्नि काकुत्स्थ - धर्मोह्यस्यां न विद्यते।।

(रामा. बाल., २५.१७ एवं २१)

दशरथवाक्यम् स्मृत्वा विश्वामित्रवाक्यं अनुसृत्य। राम: ताटकां जघान। (बाल., २६.२–४)

विश्वामित्रवाक्यं सर्वथा आचरणीयमिति पितु: शासनं तदेव राम: अनुष्ठितवान्। ताटकावधं दृष्ट्वा तस्य शाक्तिं कर्तव्यपरायणत्वं गुरुणामाज्ञापालकत्वं वीक्ष्या विश्वामित्र: तस्य शाक्तिं दिव्यास्त्रदानेन वर्धयामास। शताधिकानि दिव्यास्त्राणि भृशाश्र्वादागतानि विश्वामित्र: रामाय दत्तवान्। तत्प्रयोजनमपि विश्वामित्र: 'वधार्थं रक्षसां यानि दऽदाम्येतामि सर्वश:।' इत्युक्तवान्। तैरेवास्त्रै: अनन्तरं राम: सुबाहु प्रभृतीन् जघान। ताटकवधमेव रामकृत अद्भुतकर्मसु प्रथमं तत्रैव राम: स्ववैचक्षण्यं प्रदर्शित: सर्वेषु कार्येषु अनन्तरमपि एवमेव रामस्य प्रवृत्ति: श्रीमद्रामायणे दृश्यते। मनुष्यसम्बन्धेषु ये ये उत्तमा: गुणा: अभिलविता: ते सर्वे रामे वर्णिता:।

१. उत्तम: पुत्र:	२. उत्तम: भ्राता
३. उत्तम: पति:	४. उत्तम: पालक:
५. उत्तम: सुहृद् (शरणागतरक्षक:)	६. सम्पूर्णमानव:
७. सर्वदा रक्षकश्च	८. उत्तम नायक:

एते धर्मा: मनुष्यस्य वैयक्तिका: सामाजिकहितकारकान् गुणानपि राम: बिभर्ति। अतएव रामो

विग्रहवान् धर्मः इति शतृभिः अपि कीर्तितः।

१. उत्तमः पुत्रः

जीवतोः वाक्यकरणात् प्रत्यब्धं भूरिभोजनात्।
गयायान् पिण्डदानाश्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता।।

इति लोकोक्तिः प्रसिद्धः एव। तत्र जीवतोः वाक्यकरणादित्येव पुत्रविषये पित्रोः विषये च प्रत्यक्षमुपकारकं प्रायशः पुत्रः पितुः वाक्यं परिपालयत्येव उलङ्घयितुं नेच्छति च इति न किञ्चित् अत्र चित्रमिव प्रतिभाति। लोके यदा पितुः वचनं पुत्रस्य हितकारी लाभकारी इव तदा पुत्रः पितुः वचनं पालयत्येव। किन्तु यस्य वाक्यस्य पालनेन स्वजीविते महान् अनर्थो भवति तदा पितुः वचनं पुत्रः न पालयति एषः लोकधर्मः। रामविषये एतद्विपरीतं दृश्यते चतुर्दशवर्षाणि वनं गन्तव्यमिति पितुः निर्देशः पालनीयः आसीत्। एवं पिता तं प्रत्यक्षं नोक्तवान् किन्तु कैकेय्याः मुखात् पितुराज्ञेति रामः ज्ञातवान्। दशरथः पूर्वं वरद्वयं कैकेय्यै ददौ तयोः एकेन भरतः राज्ये स्थापनीयः द्वितीयो वरस्तु चतुर्दशवर्षाणि रामः वनं रामयितव्यः इति। अपि च कैकेय्यी विवाहकाले कैकेय्याः पुत्रस्य राज्यं दास्यामीति दशरथः कन्याशुल्कं प्रति ज्ञातवान्। तं विषयं रामः जानाति –

पुरा भ्रातः पिता नः स मातरं ते समुद्वहन्।
मातामहे समाश्रौषीद्राज्यशुल्कमनुत्तमम्।।

(अयोयाकाण्ड, १०७.३)

इति भरतं स्वयमुक्तवान् च। अतः अयोध्यायाकाण्डे रामवनगमनसमये जाताशङ्का अत्र निवृत्ता भवत्येव। त्वया वनं गन्तव्यमिति दशरथः साक्षात् नोक्तवान् किं तत्र पितृवचसः पालनमिति शङ्कायाः रामोक्तिः समाधानं भवति। दशरथेनापि स्ववाक्यपालनं नकृतमिति चेत् नकृतमेव। यतः प्रजाः सर्वे राममेव राजनमिच्छन्ति अतः प्रजावाक्यं राज्ञा पालनीयमित्येषा पालकस्य प्रथमोधर्मः वाग्धान समये कौसल्या अनपत्या अतः त्वस्याः पुत्रः उत्पद्यते स ज्येष्ठो भविष्यतीति दशरथः न जनानि। अतः श्वषुराय वाचं दत्तवान् ततः रामः ज्येष्ठोभूत् अगुणेऽपि ज्येष्ठे राज्ञा राज्यं दातव्यमित्यपि परम्परागतो राजधर्मः तमपि दशरथः जानाति । अतः राजधर्मं प्रजाभिमतं च आलोच्य राममभिषेक्तुं कृतनिश्चयः। नृशंसं अनुशंसं वा इति विश्वामित्रोक्तः राजधर्मः अत्रापि अनुसन्धेयः अपि च राममपि दशरथं स्वस्य वनगमन वार्तामुक्त्वा तेन अनुज्ञात एव वनं जगाम इति अयोध्याकाण्डे स्पष्टम्। अहं वरदानेन मोहितः अतः माम् दत्वा राज्यं गृहाण इति दशरथः स्पष्टं राममुक्तवान्।

अहं राधव कैकेय्या वरदानेन मोहितः।
अयोध्यायास्त्वमेवाद्य भव राजा निगृह्यमाम्।।

(अरण्य., २.३४-२६)

तदपि पितुः वाक्यमेव किन्तु तत् विपदि उक्तं अर्थवादरूपमिति रामो जानाति अतः तथा न कृतवान्। दशरथाय कुपितः लक्ष्मणोपि 'हनिष्ये पितरं वृद्धं' इति प्रतिज्ञाय रामं राज्ये

स्थापयितुमिच्छति। कौसल्यापि लक्ष्मणवाक्यमभिनन्दति।

हनिष्ये पितरं वृद्धं कैकेय्यासक्तमानसम्।
कृपणं चास्थिरं बालं वृद्धभावेन गर्हितम्।।
भ्रातुस्ते वदतः पुत्र लक्ष्मणस्य श्रुतं त्वया।
यदत्रानन्तरं कार्यं कुरुषु यदि रोचते।।

(अरण्य., २-२१-१९-२१)

एवं मातुः वचनं श्रुत्वापि रामः नाभिनन्दति धर्मः एव मया पालनीयः सर्वथा पिता त्वयैव अवेक्षणीयः इति कौसल्यमाश्वास्य स्वयं वनं प्रस्थितः। एकविंशे सर्गे बहवः श्लोकः रामपितृभक्तिसूचकाः वर्तन्ते। एकमुदाहरणम्–

गुरुश्च राजा च पिता च वृत्क्रोधात् प्रहर्षाद्यदि वापि कामात्।
यव्द्यादिशेत् कार्यमवेक्ष्य धर्मं कस्तं न कुर्यादनृशंसवृत्तिः।।

(अरण्य., २-२२-५९)

दशरथ मरणानन्तरमपि प्राप्तराज्यः भरतः स्वयं रामाय राज्यं दातुं चित्रकूटमागच्छति। तदानीं महर्षयः अपि राज्यं गृहाण इति रामं बोधयन्ति। यः वाचः प्रदात सोऽपि गतः पितुः प्राप्तराज्यः भरतः एव त्वां राज्यं दातुमिच्छति इति। तथापि रामः नाङ्गीकृतवान्। भरतः अग्निं प्रवेक्ष्यामि इति यदा उक्तवान् तदा भरतात् राज्यं ग्रहीतुम् अङ्गीक्तवान्। तदानिं दशरथेन भरताय राज्यं दत्तमिति दशरथप्रतिज्ञा न वितथा बभूव। भरतः स्वयं दत्तवान् भरत प्राणरक्षणं कार्यमिति वनवासानन्तरमेव राज्यस्वीकारमङ्गीकृतवान्। एवं रामः पितृवाक्यपालकानां धुरी स्थापनीयः अभूत्। अयोध्याकाण्डे त्रिपञ्चाशे सर्गे रामशोके दशरथादीनां निन्दा शोककृता न वास्तविकी इति व्याख्यातारः बहुधा समर्थयामासुः। स सर्वोव्यत्र ग्रन्थविस्तर हेतुरिति नोदाह्रीयते। अयोध्यायकाण्डेऽपि कार्यनिर्वहणे अपेक्षितानि सप्तलक्षणानि दृश्यन्ते। प्रथमतया लक्ष्यं स्वकार्यस्य पितुराज्ञापालनम्। तत्र प्रथमतया पितुरनुमतिरेव ग्राह्य पितरमनुक्त्वा स्वयं गतोपि किं त्वां अहं एवं करणीयमिति किमुक्तवान् इति पिता पृच्छति चेत् रामः स्वयं समाधातुमपि नशक्नोति। अतः पितरं स्ववनवासनिश्चयमुक्त्वा तेनैव अनुमतः गच्छामि इति रामस्य मतिरासीत्। अयोध्याकाण्डे चतुस्त्रिंशे सर्गे दशरथः रामं वनं गन्तुं स्वयमनुमेने इति वक्तुं शक्यते। कैकेय्या आदिष्टः स्वयं वनं गन्तुमुद्यतः किन्तु यदि स्वयं गच्छामि तदा दशरथः स्वयमागत्य आह्वयति चेत् तद्वचनमपि पितुराज्ञा भवेत् अतः स्वलक्ष्यप्रतिबन्धकं रितुराज्ञेवेति निश्चित्य तन्निर्वृत्तये अनुज्ञां प्राप्तुं पितुरन्तकं गतवान्। ततो दशरथः रामलक्ष्मणौ सीता च दृष्ट्वा अतीव शोकार्तः बभूवः रामोऽपि स्वयं वनं गन्तुं अनुज्ञां ययाचो। सीतालक्ष्मणौ मया वारयितुं न शक्यो अतः तावपि अनुमान्यौ इति स्वयं प्रार्थयामास। तथा स्वकार्यलक्ष्यप्राप्त्ये वास्तविको कृषिं न्याय्यया धिया रामः कृतवानेव।

आपृच्छे त्वां महाराज सर्वेषामीश्वरोऽसि नः।
प्रस्थितं दण्डकारण्यं पश्य त्वं कुशलेन माम्।।

लक्ष्मणं चानुजानीहि सीता चान्वेति मां वनम्।
कारणैर्बहुभिस्तथ्यैर्वार्यमाणौ न चेच्छतः।।

(अयोध्याकाण्ड, ३४-२३-२३)

लक्ष्यसिद्धौ प्रतिबन्धकत्वात्

दशरथः रामाय अनुज्ञां दातुं नेष्टवान्। अहं कैकेय्या वञ्चितः मयिजीवति मया दत्तं वाक्यं आचरणीयमेव अतः मम वाक्यं अविगणय्य माम् हत्वा राजा भव। एवं दशरथोक्तिः कार्यसिद्धौ प्रतिबन्धको बभूव।

प्रतिबन्धनिवर्तने रामस्य कृषिः

रामः पितरं प्रसादयन् एवं उवाच चतुर्दशवर्षाणि वनविहारमेवकृत्वा पुनः आगमिष्यामि चतुर्दशवर्षाणि इति न महान् कालः इति पुनः दशरथं आश्वासयमास।

भवान् वर्षसहस्राय पृथिव्या नृपते पतिः।
अहं त्वरण्ये वत्स्यामि न मे कार्यं त्वयानृतम्।।
नव पञ्च च वर्षाणि वनमासे विहत्य ते।
पुनः पादौ ग्रहीष्यामि प्रतिज्ञान्ते नराधिप।।

(अयोध्याकाण्ड, ३५/२८-२९)

तत्र चतुर्दशवर्षाणि इति महान्तं कालं अनुक्त्वा अल्पावधिदर्शनार्थं नवपञ्च इति रामः साभिप्रायं उक्तवान्। भवान् वर्षसहस्रायपतिः इत्युक्तेः भवतः आयुषः प्रमाणे अयं कालः अल्पाल्पः इति द्योतयामास। वनवासं कृत्वा इति रामः नोक्तवान् वनवासे विहत्य इत्युक्तवान् राज्ञां यूनां च वनविहारः ज्योत्स्ना जागरः विनोदहेतुः शृङ्गारवृद्धि हेतुरिति रसविधः जानत्येव। सीतासमेतः रामः वनविहारार्थं गच्छति इति दशरथः यथा मन्यते तथा रामः उक्तवान् लक्ष्मणस्तु रामस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयान् न च तेन विना निद्रां लभते पुरुषोत्तमः। इत्यादि बालकाण्डश्लोकेषु एष विषयः विस्तरेण वर्णितः।

लक्ष्मणो लक्ष्मिसंपन्नो बन्हिः प्राण इवापरः।
न च तेन विना निद्रां लभते पुरुषोत्तमः।।

(बालकाण्ड, १८.३०)

एवं लक्ष्मणवियोग शोलोऽपि लक्ष्मणानुगमने रामस्य न भवतीति रामवचनेषु स्पष्टम्। सीतारामयोः परिचयार्थं अपि लक्ष्मणः पर्याप्तः। एवं प्रतिबन्ध निर्वृत्तिरपि रामः स्वयं निर्वित्तयामास।

नैपुण्याभिवृद्धिः

पुनः प्रतिबन्धकं अपि अयोध्याकाण्डे भरतागमने उपस्थितः। भरतः पुनः पुनः रामं प्रार्थयामास। जाबाली प्रभृतयः महर्षयः अपि रामं राज्यग्रहणार्थं चोदयामासुः। स च संवादः राम प्रतिवचनं च अयोध्याकाण्डे चतुरधिकशततम सर्गादारभ्य त्रयोदशशतकतमसर्ग पार्यय भागे

द्रष्टव्यः। कश्चित् सर्गः रामस्य राजनीति प्रकाशकः। भरतमुद्धिश्च रामोपदेशरूपः अयोध्याकाण्डे शततमे सर्गे निबद्धः।

किं मया कृतं कर्तव्यमित्यपि रामः स्पष्टं जानाति। पितुः दृष्टान्तं श्रुत्वा प्रथमं पित्रे निवाताञ्जलिं दत्तवान्। पुनः पितुरेव शासनं पालयिष्यामि इति कृत निश्चयः।

यत्राहमपि तेनैव नियुक्तः पुण्यकर्मणा।
तत्रैवाहं करिष्यामि पितुरार्यस्य शासनम्।।
न मया शासनं तस्य त्यक्तुं न्याय्यमरिंदम्।
तत् त्वयापि सदा मान्यं सर्वै बन्धुः स नः पिता।
तद्वचः पितुरेवाहं संमतं धर्मचारिणाम्।।
कर्मणा पालयिष्यामि वनवासेन राघव।
धार्मिकेणानृशंसेन नरेण गुरुवर्तिना।।
भवितव्यं नरव्याघ्र परलोकं जिगीषता।।
आत्मानमनुतिष्ठ त्वं स्वभावेन नरर्षभस।
निशाम्य तु शुभं वृत्तं पितुर्दशरथस्य नः।।

(अयोध्याकाण्ड,१०५.४१-४५)

उत्तमः भ्राता

राजपुत्राः राज्यप्राप्तये अन्योन्यं कलहायमानाः अन्योन्यं जिघांसवश्च भवन्ति। किन्तु राम (जिघांसवः इन्तुमिच्छन्तः हनने कृतोद्यमाः च) - भ्रातृणां चतुर्णां मध्ये महान् अनुरागः एवासीत्। रामशतृज्ञयोः अन्योन्यसम्बन्धः केवलं उत्तरकाण्डे एव दृश्यते किन्तु रामलक्ष्मणयोः रामभरतयोः च अनुरागः सौभात्रं च रामायणे सर्वत्र वर्णितः।

रामलक्ष्मणसम्बन्धः - बालकाण्डे बाल्ये रामलक्ष्मणौ भरतरात्रृज्ञौ अन्योन्यं सहचारिणौ बभूवतुः। रामः सर्वान् भोगान् लक्ष्यणाय संविभज्य स्वयं अनुभवतिस्म। एवं भरतशत्रज्ञयोः अपि सम्बद्धः आसीत्।

बाल्यात्प्रभ-ति सुस्निग्धः लक्ष्मणो लक्ष्मीवर्धनः।
रामस्यलोकरामस्य भ्रातुः ज्योष्टस्य नित्यशः।।

(बालकाण्ड, २८.१९)

भरतः विवाह समनन्तरमेव अयोध्यायाः दुरं गतः अतः रामभरतयोः नित्यसंयोगः न दृश्यते। स्वस्यपट्टाभिषेकवार्तां श्रुत्वा रामः राज्यभोगान् संविभज्य लक्ष्मणाय दास्यामि इति प्रथमं उक्तवान्। एष विषयः अयोध्यकाण्डे चतुर्थसर्गे विस्तरेण वर्णितः।

लक्ष्मणेमां मया सार्धं प्रशाधित्वं वसुन्धराम्।
द्वितीयमेऽतरात्मानं त्वामियं श्रीरुपस्थिता।।

(अयोध्याकाण्ड, ४.४३)

अस्मिन् काले त्यागि, क्रोधनः, कामि क्वचित् भीतश्च भूत्वा उत्तमः शासकः सुखभाक् भवति। भीतिः तावत् धर्मादन्यत्र न कार्य यत् धर्मात् भीत एव रामः सत्यं पालयितुं वनं जगाम क्षत्र धर्मात् भीतः इव रक्षोनध प्रतिज्ञां अङ्गीकृतवान्। रावणस्तु परदारापहरणरूपात् अधर्मात् न भीतः स्वनाशं स्वयमेव अङ्गीकृतवान्। रामायण सारांशः पालनविषये, वैय्यक्तिकधर्मविषये, स्त्रीविषये, भोगविषये, त्यागविषये वा सर्वत्र संक्षेपेण एवं रामायणवचनैरेव ग्राह्यः।

सन्दर्भग्रन्थसूची

- श्रीमद्रामायणम् - वाल्मीकिः (8th Parts), व्याख्यात्रयोपेतम् (तिलक, गोविन्दराजीय, रामायणशिरोमणि) परिमल पब्लिकेशन् दिल्ली, २०००
- श्रीमद्रामायणम् (मूलमात्रम्), यम्. यल्. - जे प्रेस् मौलापुर मद्रास, १९५६
- श्रीमद्रामायणतत्वकथनम्, वारणासिसुब्रह्मण्यशास्त्री, पिठापुरम् तूर्पूगोदावरी, १९६१
- महाभारतम्, स्वाध्यायमण्डल् लिमिटेड् बलार्षा गुजरात्, १९८१
- मनुस्मृति, व्या. शिवराज आचार्यः कौण्डिन्न्यायनः, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वारणासी २०१२

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

पद्मपुराणे द्वादशीव्रतमाहात्म्यम्

दीपिका बेहेरा*

उपोद्घातः

भारतीयसंस्कृतिसम्प्रदायपरम्पराग्रन्थेषु पुराणानि मुख्यतमानि विद्यन्ते। तत्र पुराणवाङ्मयं भारतीयजीवनसाहित्यस्यास्ति, अमूल्यं रत्नं तथाऽतीतं वर्तमानेन सह संयोजयितुं सर्वमयी शृङ्खला च भवति। विश्वसाहित्यस्याक्षयभण्डारे अष्टादशमहापुराणानि सर्वश्रेष्ठानि अद्वितीयरत्नानि च सन्ति। भारतीयवाङ्मये पुराणसाहित्यस्य कृते एकं विशिष्टं महत्त्वपूर्णञ्च स्थानं विद्यते।

समस्तेऽस्मिन् संसारे मानवजन्मस्य सफलोपायाः बहवः पुराणग्रन्थेषु उपदिष्टावर्तन्ते। तत्र आश्रमधर्माः भगवद्दर्शनं उत्सवाः व्रतानुष्ठानं जपध्यानचिन्तनादीनि वर्तन्ते। भारतीयविज्ञानपरम्परायां सर्वेषां आस्तिकानां धार्मिकचिन्तनं अत्यन्तमावश्यकमिति ज्ञायते च।

आर्यजाते जीवनं धर्मसमयमस्ति। धर्मस्य यज्ञदानतपांसि त्रीणि प्रधानान्यङ्गानि आवश्यकं कर्तव्यत्वेन शास्त्रेषु निर्दिष्टानि सन्ति। एषां त्यागः कदापि नोचितः। यत् एतानि त्रीणि मनीषिणामपि पावनानि सन्ति। अत एवोक्तं गीतायां भगवता श्रीकृष्णेनार्जुनं प्रति उक्तं यत् –

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।।[१]

यज्ञ–दान–तप इति त्रयाणामेव वैशिष्ट्यमत्र उपदिश्यते। अतो नियमितरूपेण व्रतोत्सवस्य तपोधर्ममूलकत्वेऽपि तत्र दानधर्मयज्ञा अपि समावेशः विद्यते। पुराणसाहित्येषु तिथि–वार–नक्षत्रादि नानाविधानि व्रतानि परिलक्षन्ते। तिथिव्रते प्रतिपदादारभ्य पूर्णिमां यावत् विभिन्नानि व्रतानि दृश्यन्ते। अग्नि–नारद–भविष्य–पद्म–स्कन्दादिषु पुराणेषु एतेषां तिथिव्रतानां स्वरूपं लक्षणञ्च समुपलभ्यन्ते। तत्रत्यागानामादर्शचरित्राणामनुशीलनेन मनसः समुन्नतौ चरित्रसङ्गठने च महत् साहाय्यमवाप्यते। व्रतोत्सवानामानुष्ठानेन आरोग्यलाभो भवति।

पद्मपुराणे द्वादशीव्रतम्

श्रीपद्ममहापुराणे सृष्टिखण्डे उत्तरखण्डे च द्वादशीव्रतानां वर्णनमुपलभ्यते। भाद्रपदमासे श्रवणनक्षत्रयुक्तद्वादशी अत्यन्तं पुण्यप्रदायिका वर्तते। सरितसङ्गमे स्नानं समाप्य द्वादशीव्रतं करणीयम्। अस्मिन् दिने निराहारेण व्रतं क्रियते चेत् महत् फलं प्राप्यते। बुधवासरे तथा

---

* शोधच्छात्रा, पुराणेतिहासविभागः, राष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः तिरुपतिः, आन्ध्रप्रदेशः

श्रवणनक्षत्रयुक्ता द्वादशी महत् फलं ददाति तथा तस्मिन् दिने अखिलफलम् अक्षयपुण्यप्रदं भवति। यथा पद्मपुराणे उक्तम् –

मासि भाद्रपदे शुक्ले द्वादशी श्रवणान्विता।
सा वै सर्वदा पुण्या ह्युपवासे महाफला।।[२]
सङ्गमे सरितां स्नात्वा द्वादशीं समुपोषितः।
अयत्नात्समवाप्नोति द्वादशद्वादशीफलम्।।[३]

व्रती तस्मिन् दिने जलपूर्णं कुम्भोपरि एकं पात्रं संस्थाप्य तस्योपरि भगवन्तं जनार्दनं संस्थापयेत्। अनन्तरं घृतयुक्तं नैवेद्येन भगवन्तं जनार्दनाय समर्पयेत्। स्वशक्त्यानुसारेण नवकुम्भान् प्रदाय भगवतः जनार्दनस्य अर्चनं करणीयम्। अतः पद्मपुराणे उच्यते यथा –

जलपूर्णं तदा कुम्भं स्थापयित्वा विचक्षणः।
तस्योपरि न्यसेत्पात्रं स्थापयित्वा जनार्दनम्।।[४]
ततस्तस्याग्रतो देयं नैवेद्यं घृतपाचितम्।
नवकुम्भान्सोदकांश्च दद्याच्छत्तया विचक्षणः।।[५]
एवं सम्पूज्य गोविन्दं जागरणं तत्र कारयेत्।
प्रभाते विमले स्नात्वा सम्पूज्य गरुडध्वजम्।।[६]

अनन्तरं पुष्प–धूप–नैवेद्येन मन्त्रपाठेन च पुष्पाञ्जलिं समर्पयेत्। **हे गोविन्द, मम सर्वपापं विनश्य मह्यं सर्वं सुखम् अक्षयं च प्रददातु।** विशेषरूपेण वेदज्ञः तथा पुराणविशेषज्ञः ब्राह्मणाय विधिपूर्वकं अन्नदानं विधातव्यम्। व्रतमिदं नदीतीरे विधिपूर्वकं करणीयम्। तद्यथा –

अन्नं तु ब्राह्मणे पूतं वेदवेदाङ्गपारगे।
पुराणज्ञे विशेषण विधिवत्संप्रदापयेत्।।[७]
अनेन विधिना चैव नद्यास्तीरे नरोत्तमः।
सर्वं निवर्तयेत्सम्यगेकचित्तरतोऽपि सन्।।[८]

अस्मिन् व्रतविषये पद्मपुराणे वणिजः उपाख्यानं दृश्यते। यत् वणिक् अपि नदीनां सङ्गमस्थले श्रवणद्वादशीव्रतं सम्पाद्य मरणानन्तरं वैकुण्ठं प्राप्तवान् इति। अतः इदं श्रवणद्वादशीव्रतं सर्वसौभाग्यप्रदं सर्वपापविनाशकञ्च अस्ति। अनेन व्रताचरणेन मनुष्यः विष्णुलोकं प्राप्नोति। तथैव माघमासे शुक्लपक्षे द्वादशीतिथौ घृततिलमिश्रित जले स्नानं सम्पाद्य **ॐ नमो नारायणाय** इति मन्त्रेण श्री विष्णुः अर्चनीयः। कृष्णाय नमः इति चरणस्य, कृष्णात्मने नमः इति शिरसः, श्रीवत्सधारिणे नमः इति वक्षस्थलस्य, शङ्खिने नमः, गदिने नमः, वरदाय नमः, इति मन्त्रैः आहूय अर्चनं करणीयम्। दामोदराय नमः उदरस्य, पद्मनाभाय नमः कटिप्रदेशस्य इति मन्त्रेण पूजा

करणीया। यथा श्रीपद्मपुराणे –

माघमासस्य दशमी यदाशुक्ला भवेत्तदा।
घृतेनाभ्यंञ्जनं कृत्वा तिलैः स्नानं समाचरेत्।।[९]
तथैव विष्णुमभ्यर्चेन्नमो नारायणाय च।
कृष्णाय पादौ सम्पूज्य शिरः कृष्णत्मनेति च।।[१०]

अनेन प्रकारेण श्रीगोविन्दस्य पूजां क्रियते। सूर्यास्तमयानन्तरं सायङ्काले नारायणाय नमः, भवतः शरणं अहं ब्रजामि। अथान्तरे अनेन विधानेन एकादश्यानन्तरं द्वादशीव्रतं सम्पाद्यते। अस्मिन् द्वादशीव्रते विष्णोः भगवतः अर्चनं कृत्वा ब्राह्मणाय दक्षिणा दातव्या। प्राचीनकाले व्रतमिदं स्वयं भीमः समाचरितवान्। अतः अस्य व्रतस्य नाम भीमद्वादशीव्रतम् इत्युच्यते।

अनन्तरं कार्तिकमासे विशोकद्वादशीव्रतमनुष्ठीयते। दशमीतिथौ व्रतस्यारम्भः भवति। स्वल्पाहारपूर्वकमिन्द्रियनियन्त्रणैः मानवः व्रतं कुर्यात्। एकदश्यां निराहारेण केशवदेवमर्चयेत्। द्वादशीतिथौ विशोकाय नमः इति मन्त्रेण भगवन्तमर्चयेत्। अथ श्रीपद्मपुराणे उच्यते। यथा –

पुण्यमाश्वयुजे मासि विशोकद्वादशीव्रतम्।
दशम्यां लघुभुग्विद्वान्प्रारभेत यमेन तु।।[११]
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा दन्तधावनपूर्वकम्।
एकादश्यां निराहारः सम्यगभ्यर्च्य केशवम्।।[१२]

उपसंहारः

इदं द्वादशीव्रतमाध्यमेन अनेकजीवानां विशेषरूपेण मानवानां बहवः उपकारं भवति। द्वादशीव्रताचरणेन सप्तजन्मार्जितं पापस्य क्षयः भवति। द्वादशीव्रतं मानवाय धर्मार्थकाममोक्षरूपपुरुषार्थचतुष्टयं प्रददाति। द्वादशीव्रतं सर्वेषां कामनां पूर्णं करोति। यः पुरुषः द्वादश्यां विष्णुं पूजयति तस्मै विष्णुदेवः अभीष्टफलं प्रददाति इति पद्मपुराणे वर्णितम्।

सन्दर्भाः

१. श्रीमद्भगवद्गीता, १८.४
२. पद्मपुराणम्, उत्तरखण्डम्, ६९.२
३. पद्मपुराणम्, उत्तरखण्डम्, ६९.३
४. पद्मपुराणम्, उत्तरखण्डम्, ६९.६
५. पद्मपुराणम्, उत्तरखण्डम्, ६९.७
६. पद्मपुराणम्, उत्तरखण्डम्, ६९.८
७. पद्मपुराणम्, उत्तरखण्डम्, ६९.११
८. पद्मपुराणम्, उत्तरखण्डम्, ६९.१२

९. पद्मपुराणम्, उत्तरखण्डम्, २३.१२

१०. पद्मपुराणम्, उत्तरखण्डम्, २३.२३

११. पद्मपुराणम्, सृष्टिखण्डम्, २१.२३

१२. पद्मपुराणम्, सृष्टिखण्डम्, २१.२४

सहायकग्रन्थसूची

- श्रीपद्ममहापुराणम्, आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, २०१५
- पद्मपुराणम्, गीताप्रेस, गोरखपुर, २०१५
- पद्मपुराण एक समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. हरेराम त्रिपाठी, प्रभा प्रकाशन, वाराणसी, १९९५
- श्रीमद्भगवद्गीगीता, स्वामी श्रीसनातनदेवजी महाराज, चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी, वि. सं. २०७०
- श्रीमद्भगवद्गीता, डॉ. राजकुमार उपाध्याय, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, २०१५

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

पुराणेषु उद्भिदानामुपयोगिता

मधुमिता साहु*

'परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः' इति वृक्षानधिकृत्य सुप्रसिद्धं सुभाषितं सर्वैरपि सुविदितमेव। वृक्षाणां परोपकारित्वं सर्वप्राणिहितकारित्वं च पुराणेषु तत्र तत्र नानप्रकारैः सुव्यक्तं प्रतिपादितमस्ति। न केवलं जीवितावधौ अपि तु मरणानन्तरमपि वृक्षाः सकलजीवजातमुपकुर्वन्ति। भागवतपुराणे यमुनां प्रति प्रस्थितः श्रीकृष्णो गोपबालानुद्दिश्य 'परार्थैकान्तजीवितान् वृक्षान्' वर्णयति। मार्गे सूर्यकिरणानां प्रकाश आसीत्। परन्तु दाहो नासीत्। पार्श्वयोस्वस्थिता वृक्षा 'आतपत्रायिता' आसन्। तेषां तथा विधमुषकारित्वं दृष्ट्वा श्रीकृष्णास्तदेवोपदारित्वं निवेदयति। वृक्षाः स्वयं वातवर्षातपहिमान् सहन्ते। तथैव तेभ्यो मानवान् सर्वप्रकारेण रक्षित्वा सुखं प्रयच्छन्ति। अतो वृक्षाणां जन्मसार्थकं यतः सर्वप्राणिनस्तानुपजीवन्ति। अर्थिनो वृक्षेभ्यो स्वेच्छितमलब्ध्वा कदापि विमुखा न प्रयान्ति। वृक्षसदृशो भूत्वा प्रणैरर्थैर्धिया वाचा च श्रेय एवाचरेत्सदा इति श्रीकृष्णो मानवजन्मसाफल्यस्य मार्गमुपदिशति निर्दिशति च। शृण्वन्तु श्रीकृष्णवचनानि –

पश्यतैतान् महाभागान् परार्थैकान्तजीवितान्।
वातवर्षातपहिमान् सहन्तो वारयन्ति नः।
अहो एषां वरं जन्म सर्वप्राण्युपजीवनम्।
सुजनस्येव येषां वै विमुखां यान्ति नार्थिनः।।
पत्रपुष्पफलच्छायामूलवलकलदारुभिः ।
गन्धनिर्यासभस्मास्थिनोकमैः कामान् वितन्वते।।
एतावज्जन्मसाफल्यं देहिनामिहदेहिषु।
प्राणैरर्थैधिया वाचा श्रेय एवाचरेत् सदा।। इति।।

(भागवतपुराण, १०,२२,३२-३९)

वृक्षाणां स्वार्थत्यागः परार्थमेव च जीवनं भविष्यपुराणेऽपि श्रीकृष्णवचनद्वारा उक्तम् –

छायामन्यस्य कुर्वन्ति तिष्ठन्ति स्वयमातपे।
फलन्ति च परार्येषु न स्वार्थेषु महाद्रुमाः।। इति।

(म.उत्तर.अ.१२८ श्लो.१५)

घनच्छायावन्तो वृक्षा न केवलं मानवानां सुखदायकाः, सर्वेषामपि भूमण्डलस्थानां

* शोधच्छात्रा, पुराणेतिहासविभागः, राष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः, तिरुपतिः, आन्ध्रप्रदेशः

प्राणिनामानन्दप्रदाः सन्ति। एतदेव न, सुतरवः पुष्पैर्देवान्, फलैः पितृन् च सुष्ठु तोषयन्ति। अतः सर्वानन्दकराणां तरुणां जिवानं धन्यमेव, प्रशंसनीयमेव, तथैवानुकरणीयमेवेति श्रीकृष्णः सम्यक् प्रतिपादयति।

प्राणिनः प्रीणयन्ति स्म च्छायावल्कलपल्लवैः।
धनच्छेदा सुतरवः पुष्पैर्दवान्फलैः पितृन्।।
पुष्पपत्रफलच्छायामूलवल्कलदारुभिः।
धन्या महीरुहा येषां विफला यान्ति नार्थिनः।। इति। (म.उ.श्लो. ४-५)

एतदेव मानवानां जन्मसाफल्यं यत्र स्वार्थत्यामद्वाय परार्थसाधनं दरीदृश्यते। एते सप्तपुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थान् परित्यज्य ये इत्युक्तदिशा मानवोन्तमाः स्वार्थाय न प्रयतन्ते, किन्तु परार्थाय वारं वारं परिश्राम्यन्ति, सफला भवन्ति, धन्यतामनुभवन्ति, अन्तस्मुखं च आस्वादयन्ति, इहलोके कीतिं परलोके शाश्वतसुखं च प्राप्नुवन्ति। नदीतीरे वृक्षारोपणद्वारा मानवानां पितृतर्पणं भवतीति पद्मपुराणे निरूपितं वर्तते। यथा –

पतन्ति यानि पत्राणि जले पर्वाणि पर्वाणि।
तानि पिण्डसमानिह पितृणामक्षयं ययुः।। इति। (पद्मपुराण (सृष्टि) ५५-६)

पुराणेषु वृक्षाणां दिन्यत्वमपि प्रतिपादितमस्ति। अतिप्राचीनकाले देवदानवोर्युद्धं समभवत्। तस्मिन् दानवैर्देवाः पराजिताः। भयभीता देवाः प्राणान् रक्षितुं जङ्घाबलमेवाश्रितवन्तः। प्रपलायनं कुर्वन्तो देवाः कुत्रापि प्राणरक्षणोपायं न लेभिरे। तदा ते सूक्ष्मरूपैः वृक्षेषु प्रविदिशुस्य च सुरक्षिता बभूवुरिति आसमहर्षिणा निरूपितमस्ति।

पुरा कोलाहले युद्धे दानवैर्निजताः सुराः।
वृक्षेषु विदिशुस्तत्र सूक्ष्माः प्राणपरीप्सया।। (प.पु.उ. १५१-२)

भगवता श्रीकृष्णेन गीतायां दशमाध्याये वक्षिते विभूतियोगे "अश्वत्थः सर्ववृक्षाणामि" ति अश्वत्थवृक्षस्य दित्वं निदिष्टं दृश्यते। तदेव दिव्यत्वमश्वत्थस्य पुराणेष्वपि प्रतिपादितमस्ति। अश्वत्थवृक्षस्य सर्वावयवेषु भगवान्विष्णुरेव वसतीति स्कन्दपुराणे सविवरं स्पष्टी कृतमस्ति। यथा –

मूले विष्णुः स्थितो नित्यं स्कन्धे केशव एव च।
नारायणस्तु शाखासु पुत्रेषु भगवान् हरिः।।
फलेऽच्युतो न सन्देहः सर्वदेवैः समन्वितः।
स एव विष्णुर्द्रुम एव मूर्तौ महात्मभिः सेवितपुण्यमूलः।
यस्याश्रयः पापसहस्त्रहन्ता भवेन्नृणां कामदुधो गुणादयः।।

(प.पु.ना.२४७.४१,४२,४४)

एतत्तु स्मरणीयं यद्विष्णुरूपतया विष्णुसहशोऽश्वत्थः सकलपापहन्ता सर्वाभीष्टप्रदायकोऽपि।

अतः स एव भूमिस्थः कल्पवृक्षः भूमण्डलगता कामधेनुश्च। अश्वत्थस्य विष्णुरूपत्वं तथैव वटस्य शिवरूपत्वं स्कान्दे स्पष्टीकृतम्। तत्रोकतम् –

सूर्यभावे पूजनीयोऽश्वत्थो वाथ वटोऽथ वा।
अश्वत्थरूपी विष्णुः स्याव्दटरूपी शिवो यतः।। इति।

(वैष्णवखण्डे, ४.३.३८)

अतोऽश्वत्थः पुत्रवत्परिपालनीयः। तत्रैवस्कान्द उक्तम् –

पितृणां मुत्पये तेन स्याप्योऽश्वत्थः समाधिना।
पुत्रवत्परिपाल्यश्च निर्विशेषं नराधिप।।

(प.पु.ना.२४५–४३)

अस्माकं भारतीयानां गृहाणामग्रभागे तुलसीवृन्दावनं प्रधानतया विराजते। तुलसीमाहात्म्यं च सर्वेश्वगतं वर्तते। दामादर रूपिणा विष्णोपरमात्मना सह तुलस्या दिवाहः प्रतिवर्ष सम्पन्नो भवति। तुलस्या महिमा गरिमा च देवीभागवते सुयुक्तं प्रतिपादितौ। यथा –

तुलसीं पुष्णसारां च सतीं पूतां मनोहराम्।
कृतपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निथिरवोपमाम्।।
पुष्पेषु तुलना यस्या नास्ति वेदेषु भाषितम्।
पवित्ररूपा सर्वासु तुलसी सा च कीर्तिता।।
शिरोधार्या च सर्वेषामीप्सितां विश्वपावनीम्।
जीवन्मुक्तां मुक्तिदां च भज तां हरिभक्तिदाम्।।

(दे.भा. ९.२४.४१–४३)

वृक्षाणां महत्त्वं हितकारित्वं चाधिकत्य विचारो यदि क्रियते तदैतदेवावगन्तव्यं यद् वृक्षाः पुत्रसदृशा इति नानाप्रकारेण पुराणेषु वक्षिताः सन्ति। भविष्यपुराणोकतान्येतानि वचनानि श्रोतन्यानि, मन्तव्यानि, चिन्तनीयानि च।

पत्रपुष्पफलानां च रजोरेणुसमागमाः।
पोषयन्ति च पितरं प्रत्यहं प्रतिकर्मणि।।
यस्तु वृक्षं प्रकुरुतेच्छायापुष्पफलोपगम्।
पथि देवालये चापि पापत्तारयते पितृन्।।
कितिरुच मानुषे लोके प्रत्यश्येति शुभं फलम्।
अतीतानागताश्चातः पितृन्सस्वगतोद्विजाः।
तारयेद् वृक्षरोपी च तस्माद्वृक्षं प्ररोपयेत्।।
अपुत्रस्य हि पुत्रत्वं पादपा इह कुर्वते।

यत्नेनापि च विप्रेन्द्र अश्वत्थारोपणं कुरु।।
शतैः पुत्रसहस्त्राणामकं एव विथिष्यते।
कामेन रोपयेद्विप्रा एकद्विविप्रसंख्यया।।

(भ.पु.मध्यमपर्वणि, अ.१०)

अपि च पुत्राणामुपरि कथं सर्वथा विश्वासः कार्यः। सुपुत्रा जायन्ते, दुष्पुत्रा अपि संभवन्ति। स्वजनकानां मरणानन्तरं प्रतिवर्षे विधिवत् श्रादूं कृत्वा पितृतोषणं कर्तारोऽल्पसंख्यका एव। वृक्षाणां व्यवहारस्तु न तादृशः। ते सदा सर्वदा पितृतोषणं कुर्वन्त एव जीवन्ति। अतो भविष्यपुराणे अकतीकृतमस्ति। यथा –

पुत्राः संवत्सरस्यान्ते श्रादूं कुर्वन्ति वा न वा।
प्रत्यहं पादपाः पुष्टिः श्रेयोऽर्थं जनयन्ति हि।।

(भ.पु. उत्तरपर्वणि,१२८–६)

अन्यच्च

पुत्रैर्विना शुभगतिर्न भवेन्नराणां
दुष्पुत्रकैयिति तथोभयलोकनाशः।
एतद्विचार्य सुधिया परिपाल्य वृक्षान्।
पुत्राः पुराणविधिना परिकल्पनीया।।

(भ.पु.उत्तर– ४५)

एतदपि स्मर्तव्यं यत् अपुत्रया शिवकन्तया देव्या पार्वत्योऽशोकवृक्षः पुत्रत्वेन परिकल्पितं आसीत् –

अपुत्रया पुरा पार्थ पार्वत्या मन्दराचले।
अशोकः शोकशमनः पुत्रत्वे परिकल्पितः।।

(भा.पु. उत्तर – १७)

एतदप्यवधेयं यद् वृक्षः पुत्रादप्यधिकः सदा सर्वदा सर्वविधैरच श्रेयस्करश्चेत्यपि पुराणेषु घोषितमस्ति। यथा –

दशकूपसमा वापी दशावापी समसरः।
दशसरः समा कन्या दशकन्यासमः क्रतुः।।
दशक्रतुसमः पुत्री दशपुत्रसमो द्रुमः।।

(स्कन्द. महा. २.२७–२१–२)

वृक्षस्य सुरवदायकत्वं हितकारित्वं च प्रकारेणान्येन निवेदितमस्ति भविष्यपुराणे। अग्निद्येत्रद्रतपालकात्पुत्रादप्याधिव्येन पथि रिपितो घनच्छायो वृक्षः पुण्यकारकः। पतिव्रता व्रतनिष्ठा

कालेव इति वहाच्छायापूर्णा पुष्पफलांकृता वृक्षावाटिका। तथाविधा वृक्षवाटिका कामातुरवारांमनेव प्रयुरसुखप्रदा। श्रृण्वन्वेतान् श्लोकान् –

न तत्करोव्यग्निद्येत्रं सुखं यद्योषितः सुतः।
यत्करोति धनच्छायः पादपः पथि रोपितः।।
सच्छाया च सपुष्पा च सफला वृक्षवाटिका।
कुलायोषेव भवति भर्तुलोकव्दयानुगा।।
अशोकफलावकरा तिलकालंकृतानना।
सर्वोपभोगवेश्येव वाटिका रसिका सहा।।

(भ.पु. उत्तरपर्वणि–१२८)

शिवपुराणोक्तानि वचनान्येतान्यपि अत्र मनसि धारणीयानि –

अतीतानागतान्सर्वान्पितृवंशांस्तु तारयेत्।
कान्तारे वृक्षारोपी यस्तस्माद् वृक्षांस्तु रोपयेत्।।
तत्र पुत्रा भवन्त्येने पादपा नात्र संशयः।
परं लोकं गतः सोऽपि लोकानान्पोति चाक्षयान्।।
पुष्पैः सुरगणान्सर्वान् फलैश्चापि तथा पितृन्।
ळाययोऽतिथीन् सर्वान् पूजयन्ति महीरुहाः।।
किन्नरोरगरक्षांसि देवगन्धर्वमानवाः।
तथा ऋषिगणाश्चैव संश्रयन्ति महीरुहान्।।
पुष्पिताः फलवन्तश्च तर्पयन्तीह मानवान्।
इहलोके परे चैव पुत्रास्ते धर्मतः स्मृताः।।

(शि. पु . ५.२१.१७.२)

अतो व्यासमहर्षिर्भविष्यपुराणे सुस्पष्टमुपदिशति। यथा –

तडागं देवभवनं वापी वृक्षो धनच्छदः।
चतुर्थकं फलं प्राप्तं कारितेऽस्मिंरचतुष्टये।।

(भ.पु – उत्तर. १२७–७१–२)

अपि च –

बहुभिर्वत किजातैः पुत्रैर्धर्मार्थवर्जितैः।
वरमेकं पथि तरुर्यत्र विश्रमते जनः।।

(भ.पु. उत्तर. १२८–३)

वृक्षाणां पुत्रत्वविषये एतान्यपि विष्णुधर्मोत्तरपुराणोक्तानि वचनानि वेदितन्यानि –

एकोऽपि शेपितो वृक्षः पुत्रकार्यकरा भवेत्।
देवान्प्रसूनैः प्रीणानि छायया चातिथींस्तथा।।
फलैर्मनुष्यान्प्रीणाति नारकयं नास्ति पादपे।
अपि पुष्पफलैर्हीने द्रुमे पान्थस्य विश्रमः।।
सेचनादपि वृक्षस्य शेपितस्य परेणतु।
महत्फलमदान्पोति नात्र कार्या विचारणा।।
वृक्षायुर्वेदविधिनां व्याधितं तु यथाक्रमम्।
नीरजः मानवः कृत्वा स्वर्गलोकमवान्पुयात्।।

(विष्णुधर्मोत्तर. पु. ३-२९७)

वृक्षारोपणं वृक्षरक्षणं च मानवानां परमकर्तव्यमिति पुराणेषु बहुप्रकारेण विहितमस्ति। कदापि वृक्षच्छेदनं न कार्यम्। वृक्षनाशस्य विचारोऽपि न करणीयः । वृक्षच्छेदनं महापापकरमिनि भविष्यपुराणे सुस्पष्टमनुरासितं वर्तते। तत्रापि वटाखत्थयोः च्छेदनेन नरो ब्रह्महत्यापापं लभत हति पौराणिकं मतम् –

किंचिच्छेदं च यः कुर्यादश्वत्थस्य वटस्य च।
श्रीवृक्षस्य च विप्रेन्द्राः स भवेद् ब्रह्मघातकः।।
मूलच्छेदेन विप्रेन्द्राः कुलपातो भवेदनु।
वृक्षच्छेदी भवेन्मूक् आधिव्याधिशतं भजेत्।।

(भ.पु . मध्यमपर्वणि. ५९-६०)

वासार्थं गृहनिर्माणावसरे परितः वृक्षारोपणं विधिपूर्वकं करणीयमेवेति सुस्पष्टं मत्स्यपुराणे उपदिष्टमस्ति –

भवनस्य वटः पूर्वे दिग्भागे सर्वकामिकः।
उदुम्बरस्तथा याम्ये वारुण्यां पिप्पलः शुभः।।
प्लक्षश्चोत्तरतो धन्या विपरीतास्त्वसिद्धये।।
पुन्नागशोकबकुलशमीतिलकचम्पकान् ।
दाडिमीपिप्पलीद्राक्षा तथा कुसुममण्डपान्।।
जम्बीरपूमपनसद्रुमकेतकी अभिर्जातीसरोजशतपत्रिकमल्लिकाभिः।
यन्नालिकेरकदलीदलपाटलाभिर्युक्तं तदत्र भवनं श्रियमातनोति।।

(भ.पु . २५५-२०.२१.२३.२९)

अन्तत्वोगत्वेदमवगन्तव्यं यद् वृक्षाः पूर्णरूपेण परोपकाराः यैव जीवन्ति। परार्थायैव ते रोहन्ति, विकसन्ति, पुष्यन्ति, फलन्तिच। न तु स्वार्थाय। तेषां सर्वावस्याः प्राणिमात्रहितार्थाय। मृता

अपि वृक्षा हितकारिण एवेति सर्वैः सुष्टू ज्ञातम्। अतः स्वपरहितैषिभिर्मानवैः सर्वथा वृक्षाणामारोपणं कर्तव्यबुध्द्या करणीयम्। तेषां रक्षणं च धर्मबुध्द्या कार्यम्। अतएव पुराणेषूपदिष्टमस्ति –

सदा स तीर्थो भवति सदा दानं प्रयच्छति।
सदा यज्ञं स यजते यो रोपयति पादपम्।।
न खानिताः पुष्करिण्यो रोपिता न महीरुहाः।
मातुर्यैवनचौर्येण तेन जातेन किं कृतम्।।

(भविष्यपुराणे, उत्तरपर्वणि, १२८.१०,१९)

''वृक्षमयं भवतु जगत्। वृक्षरक्षणं भवतु मानवधर्मः।''

सहायक-ग्रन्थसूची

- अमरकोष, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणासी, १९६८
- भागवतमहापुराणम्, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणासी, १९८८
- भविष्यपुराणम्, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. २०३७
- मत्स्यपुराणम्, नागपब्लिसर्स, दिल्ली, १९८४
- स्कन्दपुराणम्, वङ्गवासिप्रेस, कोलकाता।

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

अद्वैतसिद्धान्तः सूफिसिद्धान्तः च किञ्चित् दार्शनिकविचिन्तनम्

सौम्या. के *

यदाप्रभृति मानवः, स्वस्य मनुष्यः इति नाम्नः अर्हतां लब्धवान् तदाप्रभृति सः परितः विद्यमानानां वैविध्यानां कारणानि, तथा विविधसृष्टीः अधिकृत्य सृष्टिकर्तारं प्रति च जिज्ञासुः भूत्वा अस्वस्थः अभवत्। एवं कार्यकारणानि अधिकृत्य चिन्तया परिश्रमेण च मनुष्यैः अनेकानि दर्शनानि रूपीकृतानि। तेषु दर्शनेषु कानिचित् परिणामसिद्धान्तरूपेण, अपराणि कानिचित् कणिकासिद्धान्तरूपेण, अपराणि कानिचन अद्वैतवादः एकेश्वरवादः एवमादिभिः नामभिः आत्यन्तिकसत्यस्य मनुष्यप्रपञ्चबन्धस्य च आशयाः मनीषिभिः (स्वेषां युक्ति युक्तरीत्या) उल्लिखिताः। विभिन्नानि प्रपञ्चव्याख्यानानि तथा एकस्य व्याख्यानस्य सूक्ष्मांशे व्यत्यस्तानि, विभिन्नरूपाणि च आविष्कृतानि इति कारणात् पुरातनत्वचिन्ता कदापि एकशिलारूपा नासीत्।

तत्त्वचिन्ता इति पदं विविधशास्त्रशाखानां सम्बन्धस्य सूचनारूपेण विवादरूपेण च प्रयुज्यते। धर्मः तत्त्वचिन्ता च सत्यान्वेषणपरा यात्रा एव। किन्तु तत्त्वचिन्तायां तादृशं समिपनं पूर्णतया सैद्धान्तिकं, भौतिकं विमर्शनात्मकं च भवति। एवमपि धर्मस्य पश्चात्तले तत्र विकारस्य विचारस्य दैविकतयाः च प्राधान्यं संजायते।

तत्त्वचिन्तापद्धतीनां चरित्रपरं निरीक्षणं करोति चेत् भौतिकवादस्य आशयवादस्य च संयोजनस्य चरित्रं द्रष्टुं शक्नुमः। अत एव अत्र विभिन्नविभागानां योगात्मकधाराणां अवलोकनं करणीयं इति चिन्ता संजाता। विभिन्नमार्गैः सत्यस्य अन्वेषणं सूफिपण्डितैः (सूफिसिद्धान्तिनः) अद्वैतवेदान्तिभिः च कृतमस्ति। तादृशदार्शनिकतुलनात्मकचिन्तायाः सत्तां प्रति अन्वेषणं अनुयोज्यं इति प्रतीयते। नामभिः रूपैः च अस्माभिः दृश्यमानस्य अनुभूयमानस्य च सूक्ष्मरूपं मूलतत्त्वं च एकमेव इति चिन्तयन्तः अद्वैदवेदान्तिनः तस्य मूलतत्त्वस्य ब्रह्म इति नाम कृतवन्तः। तादृशं मूलतत्त्वं एव सर्वेषु प्राणिषु अन्तर्यामी भूत्वा स्फुरन्ति इति अवबुध्य तत् तत्त्वमेव अनल्हख् इति प्रख्यापनं कृतवन्तः आसन् सूफिगुरवः। वस्तुतः अद्वैतिनः सूफिवर्याः च एकमेव सत्तां अनुभवन्ति।

यागादिकर्मणां उपासनानां च प्राधान्यं कल्पितवतां जनानां समूहे सर्वेषु मानवेषु आत्यन्तिकरूपेण तिष्ठन्ती सत्ता एकैवेति शङ्कराचार्यस्वामिना स्वस्य ग्रन्थैः, वादप्रतिवादैः च

* Assistant Professor, Department of Languages & Linguistic School, Chinmaya Vidyapeeth, Ernakulam, Kerala

स्थापिता। तदा एव शङ्करवेदान्तयुगस्य उत्पत्तिः समजायत।

स्वस्य स्वत्वं नष्टीभूय अनश्वरं आत्यन्तिकं च परं ब्रह्म एव अवशिष्यते इति अनुभूतिः स्वयं अनुभूतवान् मन्सूर्हल्लाज् इति सूफिवर्यः शङ्कराचार्यस्य तत्त्वमसि इति अनुभववाक्यं एव अनल्हख् इति प्रख्यापनेन स्थापयितुं परिश्रमं कृतवान्। अत्रैव एतत् तत्त्वचिन्ताद्वयं (अद्वैतं, सूफिसं च) बाह्याचारानुष्ठानैः विभिन्नतायाः अधित्यकायां स्थितमपि आन्तर्दर्शनविषये समानतायाः समतलं सृजति।

सूफिवर्याणां दार्शनिकचिन्तासु केचन सिद्धान्ताः, भारतीयानां संस्कारैः तत्त्वचिन्ताभिः च सह साम्यं वहन्ति। सूफिसिद्धान्तेषु पेर्ष्यन् संस्कारः प्राधान्येन द्रष्टुं शक्नुमः। आर्यसंस्कारसम्पन्नयुक्तस्य सौराष्ट्रधर्मस्य परिणतरूप एव पेर्ष्यन् संस्कारः। अत एव भक्तेः अद्वैतस्य च समन्वयं सूफिसिद्धान्ते प्रकटरूपेण दृश्यते।

सूफिसिद्धान्त कश्चिदनुभवः

इस्लामिकदार्शनिकधारायाः विकसितं मनोहरं च पाटलपुष्पं भवति सूफिसिद्धान्तः। सूफिपण्डिताः (सूफिसिद्धान्तिनः) अल्लाहोः सुहृदः (मित्राणि) इति चरित्रकाराणां अभिप्रायोऽस्ति।

कम्बलं इत्यर्थे प्रयुक्तवान् सूफ् इति पदात् एव सूफि इति पदं संजातम्। आत्मनियन्त्रणस्य चिह्नं इति रूपेण प्राथमिककाले सूफिवर्याः कम्बलमेव धरन्ति स्म। अत एव सूफिः इति नाम संजातम् इति अभिप्रायोऽपि अस्ति।

निगूढता, निगूढज्ञानी इत्यादिषु अर्थेषु प्रयुज्यमानस्य तसभुव् इति पदस्य समानार्थपदं भवति सूफिसम्। परम्परागतरीतेः विभिन्ना दार्शनिकता एव सूफिषु (सूफिपण्डितेषु) द्रष्टुं शक्नुमः। ईश्वरः मनुष्यमनसु एव द्रष्टव्यः, न स्वर्गे इति सूफिनां अभिप्रायः। परितः प्रसार्यमाणः ईश्वरानुभवः तथा ध्यानं च एव सूफिपण्डिताः अङ्गीकुर्वन्ति। अत एव ईश्वरस्नेहेन युक्ताः आचाररीतयः देशकालरीतीनां अनुरूपमेव सूफिपण्डिताः समानतां वहन्ति।

प्रवाचकात् मुहम्मद आरभ्य अलिं प्रति ताभ्यां द्वाभ्यां हसन्वस्वारिं प्ति, तेभ्यः अबुहाशिं प्रति च सूफिधारा प्रसृता इति इतिहासकारैः (चरित्रकारैः) समर्थ्यते। किञ्चइमांमलिक्, राम्पिया–अल्अदविया जुनैद् बाग्दादि इमांगसलि रूमि ओमर्खय्याम् कबीर इत्यादयः सूफिवर्याः च तेषां जीवनकाले सूफिसिद्धान्तानां अभिवृद्धये प्रयत्नं कृतवन्तः आसन्।

अद्वैतं नाम अमृतम्

अद्वैतदर्शनं जीवब्रह्मैक्यम् इति सिद्धान्तमेव अवतारयति। वर्णाश्रमधर्माणां दुर्व्याख्यानं कृत्वा धर्मस्य नामनि मनुष्यैः एव अधः कृतानां मनुष्याणां समूहे एव स्थित्वा शङ्कराचार्यः अद्वैतदर्शनं अवतारितवान्। एतत् दर्शनं तु वेदरूपात् क्षीरसमुद्रात् मथनं कृत्वा लब्धं अमृतं आसीत्। किञ्च एतत् वेदेषु गुप्तरूपेण संरक्षितं चासीत्। एतादृशं अमूल्यं अनर्घं च अद्वैतदर्शनं आचार्यस्वामिनः कालस्य परिणामानुसारं अवतारितवान् व्यवस्थापितवान् च।

यदा प्रपञ्चवस्तूनि सूक्ष्मरूपेण विशकलनं करोति तदा तानि सर्वाणि ब्रह्मणः मायाकल्पिताः अवस्थाभेदाः एव इति अद्वैतदर्शनं व्यक्ततया प्रतिपादयति। देशकालविच्छिन्नम् निरूपाधिकं सच्चिदानन्दस्वरूपं एव ब्रह्मतत्त्वम्। यावत् तस्य अप्रमेयप्रभावः अनुभूतः भवति तावत् द्वैतभावः स्थीयते। शरीरेण तादात्म्यभावात् अनेकधा ज्ञायमानेषु जीवजालेषु सूक्ष्मकीटात् प्रभृति महानुभावमानवपर्यन्तं सर्वेषु दृश्यमानं (स्फुरत्) तत्त्वं तस्मात् (मानवात्) अभिन्नं नेति, तथा तत् तत्त्वं ब्रह्मसाक्षात्कारेण अनुभूयमानं भविष्यति इति च शङ्कराचार्यः अद्वैतदर्शनेन स्थापितवान्।

अद्वैतं सूफिसं च समानधारायाम् यद्यपि स्थूलानि आाचारानुष्ठानानि विभिन्नसांस्कारिकतले उत्भूतानि तथापि सूक्ष्मरूपेण निरीक्ष्यते चेत् तेषां धाराः प्रवाहाः एकस्मात् सूक्ष्मत्वात् एव उत्भूताः इति द्रष्टुं शक्नुमः।

अत एव येशुदेवेन (क्रिस्तुदेवेन) तथा कबीर्महाशयेन च समानतया उक्तं, यत् ईश्वरहृदये एव तिष्ठति इति। स्थूलतायाः (स्थूलात्) सूक्ष्मतां प्रति सञ्चरन् व्यक्तिः एव सूफिवर्यः संजायते। तावता कालेन सतायं इति चिन्तितं सर्वं (किमपि) सत्यं न इति प्रबुद्धता (बोध्यम्) एव सूफिवर्याणां सञ्चारपथं नयति। परमसत्तारूपं एकसत्यं अनुभवेन ज्ञातवन्तः सूफिवर्याः स्वेषां सञ्चारपथे कालेषु देशेषु च द्रष्टुं साधुभूतं सर्वं स्वायत्तीकृतवन्तः। अत एव अद्वैतदर्शनमपि ते स्वीकृतवन्तः इति विषये न सन्देहः।

भक्तेः उत्कृष्टं ईश्वराधिष्ठितं प्रणयम् इति अनुभूतिरूपेण जलालुद्दीन् रूमिमहाशयः स्वस्य मस्नवि इति रचनायां इश्वे इवाहि इति उद्घोषितवान्। ईश्वरे प्रणेयेन द्वैतभावं त्यक्त्वा एकतां अनुभवेन साक्षात्कर्तुं रूमि महाशयः स्वजीवितं ईश्वरे समर्पयामास। सूफिचिन्तामार्गः एव रूमिमहाशयस्य इदं तत्त्वं प्रति चिन्तितुं प्रेरणादायकः अभवत्।

युक्तिचिन्ता भक्तिभावे विलयं प्राप्य समर्पणस्य भूमिकां प्रविष्ठमाना अवस्था एव अत्र रूमिमहाशये द्रष्टुं शक्नुमः।

वहदत्तुल् वुजुद् हुलूल् इत्तिहाद् इति तिस्रः संज्ञाः साधारणतया अद्वैतवेदान्तस्य सूफिचिन्ताधारायाः च समानाशयाः इति अवगन्तुं शक्नुमः। केवलं परमस्वत्वं एव कालदेशापरिछिन्नशासावतरूपेण स्थीयते इत्यनेन, अपरं सर्वमपि तेन स्वत्वेन योजयित्वा यदि पश्यति चेत् असतः (असत्वस्य) समानम् इति दर्शनमेव वहदत्तुल् वुजुद् इति नाम्ना ज्ञायते। अनादिरूपं ईश्वरास्तित्वं पूर्णचन्द्रेण उपमीयते। तत् दर्शनं बहुक्रोशदूरात् यदा वयं दृष्ट्या साक्षात्कुर्मः तदा सूक्ष्मरूपेण अनुभवति च। वस्तुतः तस्य परिणामः न सम्भवति। तादृशपरमसत्तायाः सत्त्वं एव सर्वचराचराणां सृष्टेः कारणभूतं जायते। यदि पात्रे स्थिते जले मषिः पतति चेत् मषेः सविशेषास्तित्वं नास्ति। जले सर्वत्र मषिः व्याप्नोति। वस्तुतः सृष्टिकर्तुः सृष्टिकर्मणः प्रकटनेन सह प्रपञ्चस्य अस्तित्वं च स्थीयते इति सारः। एतदेव अद्वैतसिद्धान्ते ब्रह्म सत्यं, जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः इति शङ्करवचनम्।

अत्र आचार्यस्वामिनः (शङ्कराचार्यः) प्रपञ्चस्य नश्वरतामेव निभावनं करोति। तदा सैद्धान्तिकतया वह्दत्तूल् वुजुद् अद्वैदसिद्धान्ते परामृष्टां (विशदीकृताम्) प्रकृतिनश्वरतामेव अनुगच्छति। अस्य नश्वरप्रपञ्चस्य मायिकतां अवगन्तुं सूफिवर्याणां मार्गः हखीखत् इत्यपि ज्ञायते।

स्वसृष्टिं प्रति ईश्वरस्य अवरोहणम् इति भावना हुलूल् इति नाम्ना सूफिवर्यैः कथ्यते। ईश्वरः जीवात्मरूपेण अस्माकं शरीरस्यान्तः प्रत्यक्षी भवति इति, किञ्च तस्य तत्त्वस्य (ईश्वरतत्त्वस्य) ज्ञानमेव मुक्तिमार्गः इति च अद्वैतवेदान्तिनः अङ्गीकुर्वन्ति। एवं सूफिवर्याः अपि ईश्वरस्य प्राणिशरीरान्तप्रवेशनरूपां (मनुष्यशरीरान्तः प्रवेशनम्) भावनां अवतारयन्ति। अत्रापि अद्वैतवेदान्तस्य सूफिसिद्धान्तस्य च समानतां द्रष्टुं शक्नुमः।

ईश्वरस्य मनुष्यस्य च एकीभावः एव इत्तिहाद् इति संज्ञया सूफिपण्डिताः सूचयन्ति। अत्रापि अद्वैतवेदान्तिनां जीवब्रह्मैक्यतत्त्वस्य छायां द्रष्टुं शक्नुमः।

अद्वैतवेदान्तः वह्दत्तुल् वुजुद् च आशयपरतया एक एव इति विभिन्न इति च अभिप्रायद्वयं (मतद्वयं) अस्ति। दार्शनिकेषु अयं विषयः गवेषणाय मार्गः च भवति। तथापि अद्वैतवेदान्तिनां सूफिपण्डितानां च सगुणोपासनाः केवलं परत्वं (परमतत्त्वं) प्रति मार्गः एव इति तेषां दर्शनपन्थानं वीक्ष्य अवगन्तुं शक्नुमः। सूफिपरिषत्सु संचाल्यमानाः दिक् रवः उपासनारीतयः च अस्य उदाहरणत्वेन वक्तुं शक्नुमः।

ईश्वरस्य याथार्थ्यं (दैविकयाथार्थ्यं) अन्विष्य सूफिवर्याणां गवेषणं प्रति मौलाना जलालुद्दीन् रूमि महाशयः एवं वदति –मार्गदार्शिका वर्तिका भवति अनुशासनानि, एतां वर्तिकां विना यात्रा असाध्या तथा एषा (एतादृशी) यात्रा एव त्वरिखत् इतिज् ज्ञायते। यदा परमसत्तायाः अनुभूतिः जायते तदा यात्रा पर्यवस्यति। सा अवस्था एव हखीखत्। अत्र शरियत् शासनानां प्राधान्यं नास्ति। अयं (हखीखत्) कश्चित् मार्गः। अस्मात् मार्गात् अनेके उपमार्गाः संजाताः। एते उपमार्गाः विविधसंस्कारेषु विविधरूपेषु संजाताः। किन्तु सर्वेषां मार्गाणां अन्तर्धारा केवलं परमसत्तायां लयनमेव इति चिन्तयामः।

अद्वैतवेदान्ते अपि कर्माणि, सगुणोपासनां च तत्त्वशुद्धये मार्गरूपेण स्वीकुर्वन्ति। एतैः (एतादृशैः) मार्गैः यदा चित्तशुद्धिः प्राप्यते तदा त्वरीखत् इव उपासनाः अप्रधानाः भविष्यन्ति। तथापि साधारणजनेषु अद्वैतं भक्तिमार्गः एव। अत एव शङ्कराचार्यैः सौन्दर्यलहरीत्यादीनि अनेकानि भक्तिसूक्तानि रचितानि। गिबरिसं समाधिः च।

सूफितत्त्वचिन्तायां गिबरिष् इति कश्चित् संप्रदायोऽस्ति। गिबर् इति नाम्ना सूफिवर्येण आविष्कृतत्वात् एव गिबरिसं इति नाम संजातम्। सूफिपण्डिताः सविशेषरीत्या स्वेषां आराध्यदेवस्य नामानि प्रार्थयन्ति। योगात्मकरीत्या मनः ध्यानमग्नं कुर्वन्ति इत्येव सारीतिः। तादृशरीत्या एव समाधेः तलं प्राप्नोति। सर्वमपि समावस्थायाम् इति स्थितिः खलु समाधिः। यथार्थतत्त्वे विलयं प्राप्नोति इति अवस्था एव समाधिः इति शब्देन विवक्षते। एतादृशरीत्या यथार्थतत्त्वे निलयं प्राप्तुं

मार्गः एव गिबरिस् इति कथ्यते। गिबरिसे निर्विकल्पसमाधेः रहस्यं गुप्तं (गोपनं कृतम्) भवति। यदा वयं अर्थयुक्तानां नामानां उच्चारणं कृत्वा भजनं कुर्मः तदा मनसि सर्वत्र ईश्वरस्वरूपं प्रसरति। तादृशी अवस्था एव सविकल्पकसमाधिः। सविकल्पकसमाधेः अनन्तरदशा भवति निर्विकल्पसमाधिः। तस्यां अवस्थायां मनः रूपं च विहाय निर्गुणावस्थायां मनोनाशस्य अवस्था संजायते। एषा अवस्था एव सूफिपण्डितैः फन इति अवस्थायां अनुभूयते। आध्यात्मिकचिन्तायां निमग्नाः भूत्वा दिव्यप्रेम्णि निलयं प्राप्य असदवस्थायां ब्रह्मप्राप्तिः अथवा मोक्षः संभवति। मोक्षप्राप्तये एव सूफिपण्डिताः गिवरिसं स्वीकुर्वन्ति। अस्यां अवस्थायामेव अनल् हरव् ब्रह्मास्मि च अनुभूयते।

समूहे चिरप्रतिष्ठिताः भवितुं आरब्धाः चिन्तापद्धतयः अनेकाः समस्याः अभिमुखीकुर्वन्ति। तादृशाः समस्याः अद्वैतवेदान्ते सूफिसिद्धान्ते च द्रष्टुं शक्नुमः। साधारणजनानां मध्ये अद्वैतदर्शनं सूफिसिद्धान्तः च स्वीकार्यताविषये स्वधीनतायां च सामूहिकाङ्गीकरणरूपां समस्यां अभिमुखीकुरुतः एवं सत्यपि एकविंशति शताब्द्याः मुख्यधारापण्डिताः सूफिसं, अद्वैतं तथा उभयोः दर्शनयोः दार्शनिकाः आशयाः च कालात् पूर्वमेव सञ्चरन्तः आसन्निति अभिप्रायाः प्रसरन्ति। किञ्च द्वयोरपि सिद्धान्तयोः मानविकां स्वीकार्यतां च जनाः अङ्गीकुर्वन्ति। अस्मिन् लोके यदा यन्त्राणां मनुष्याणां च संकररूपाणि सैवोर्ष्यन् रूपाणि प्रबलानि संजायन्ते तदा मानवाः परस्परं मूलरूपेण एक एव इति मानविकतायाः मुद्राघटितं दर्शनद्वयं भवति सूफिसं तथा अद्वैतवेदान्तः च इति विषये न विवादः। द्विप्रकारयोः वेदनयोः सङ्कुचितं किञ्चित् स्थलं भवति आनन्तः इति प्रशस्तकविना सच्चिदानन्देन स्वस्य वृत्तम् इति कवितायां उक्तमस्ति। किन्तु तादृशस्य आनन्दस्य मानदण्डः कियान् इति निश्चिनोतुं तादृशं आनन्दं अनुभवन् मानवः एव (व्यक्तिः एव) शक्तः भवति।

अद्वैतिनः ब्रह्मज्ञानेन वैराग्येण च शमदमादीनां परिशीलनं कृत्वा आत्मसंस्कारस्य पथा (मार्गेण) आत्मसाक्षात्कारं लब्ध्वा आनन्दं अनुभवति। किन्तु सूफिवर्याः खप्वालिभिः सूफिनृत्तपदैः च भक्तिमार्गे विलयं प्राप्य स्वयं आनन्दं अनुभवति। सत्यस्य (परब्रह्मणः) अन्वेषणमेव द्वयोरपि लक्ष्यं इति विषये न विवादः। भिन्नमार्गेण अपि एकामेव आत्यन्तिकसत्तां अन्विष्य, प्राप्य परब्रह्मणि विलयं प्राप्ताः इव आनन्दमनुभवन्ति अद्वैतवेदान्तिनः सूफिवर्याः च। तादृशस्य आनन्दानुभवस्य सुखमेव अहं ब्रह्मास्मि इति चिन्तायाः आधारः।

सङ्केतः

अनल्हख् – अहमेव सत्यम्।

त्वरिखत् – मार्गः आत्मीयान्वेषणम्।

फना – विलयनम्, नाशनम्।

शरियत् – धार्मिकान्वेषणानुशासनम्।

इश्वे इवाहि – सर्वमपि मायिकम्।

सहायकग्रन्थाः

- मिस्टिसिसम् किञ्चित् आमुखम्, इहं हाषिं अकंबुक्स् कोषिक्कोट् - २०११
- सूफिसम् प्रणयस्य बीजम्, इहं हाषिं अकंबुक्स् कोषिक्कोट् - २०११
- शैख्दुज्विरि - सूफिसं तत्त्वं, प्रयोगः, चरित्रं च। ए. के. अब्दुल् मजिद्, विचारं बुक्स्, तृश्शूर् - २०१२
- मृगीयनिष्कलङ्कता कशचित् सूफिभावः, पि. अब्दुल् गर्फू, विज्ञानकैरली, ७-२०१३
- Ragstogi Islamic mysticism T.C., New Delhi, Sterting Publications, 1982
- Godlas, Sufi Ilhuminations, Vol.1.1996 August.
- Krishna P. Bahadur, Sufi mysticism, E S S Publications.
- John A Sbhan, Sufism its Saints and shrines, Cosmo Publications 1999.
- Al. Qushayri, Principles of Sufism , Cosmo Publications 1999.
